अनाहत

अंक 3, सत्र-2021

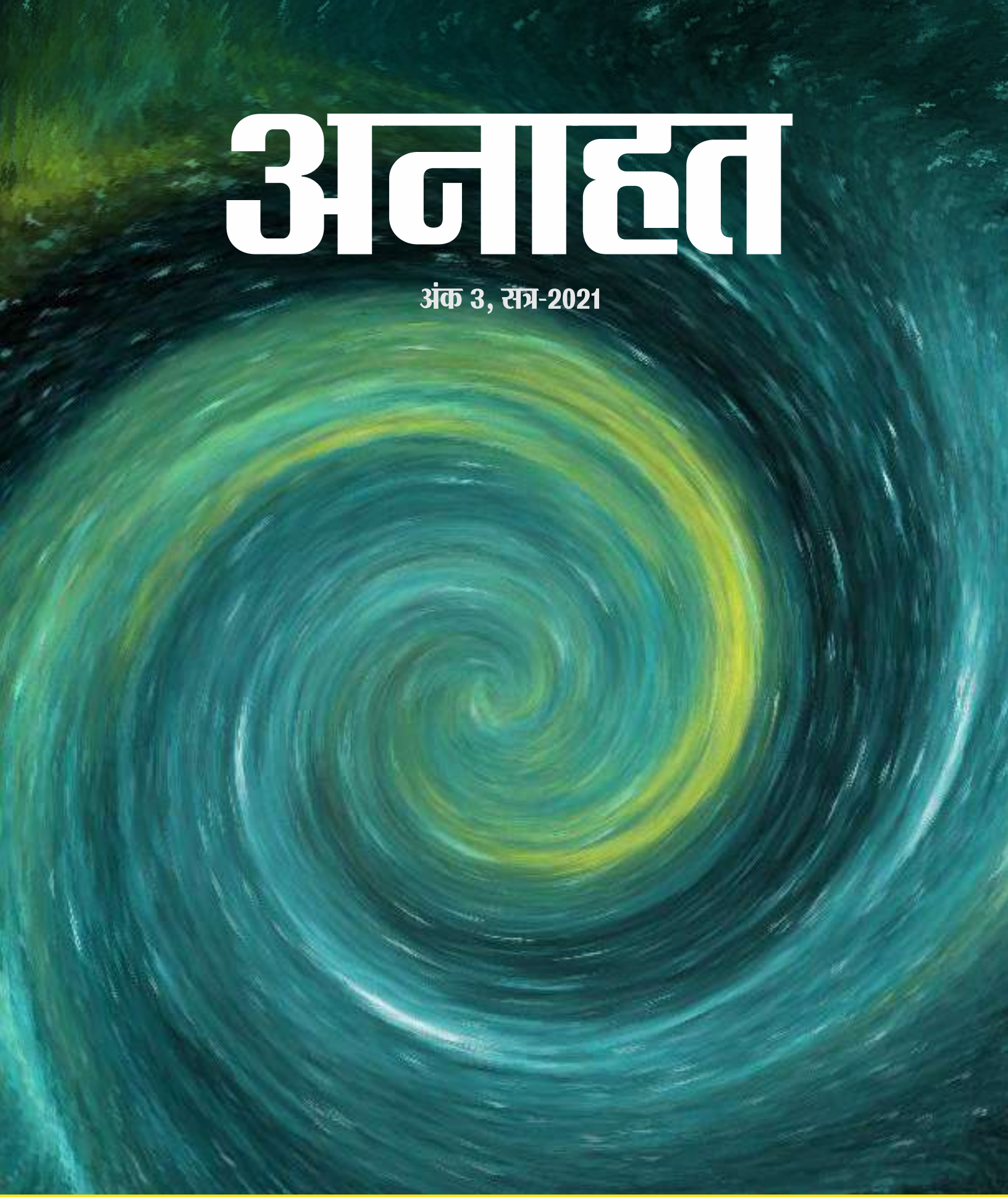

देव संस्कृति विश्वविद्यालय

www.dsvv.ac.in

सूक्ष्म संरक्षण –

• परम पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी

संरक्षक –

• परम श्रद्धेय कुलाधिपति जी एवं परम श्रद्धेया जीजी जी

मार्गदर्शक मंडल –

• श्री शरद पारधी, मान ० कुलपति देवसंस्कृति विश्वविद्यालय

• डॉ. चिन्मन्य पण्ड्या, मान० प्रति कुलपति देवसंस्कृति विश्वविद्यालय

• श्री बलदाऊ देवांगन, रजिस्ट्रार, देवसंस्कृति विश्वविद्यालय

कुलपिता
पं.श्रीराम शर्मा आचार्य
(1911-1990)

कुलमाता
माता भगवती देवी शर्मा
(1926-1994)

संरक्षक
डॉ.प्रणव पण्ड्या
कुलाधिपति

संरक्षिका
शैलबाला पण्ड्या
प्रमुख गायत्री परिवार

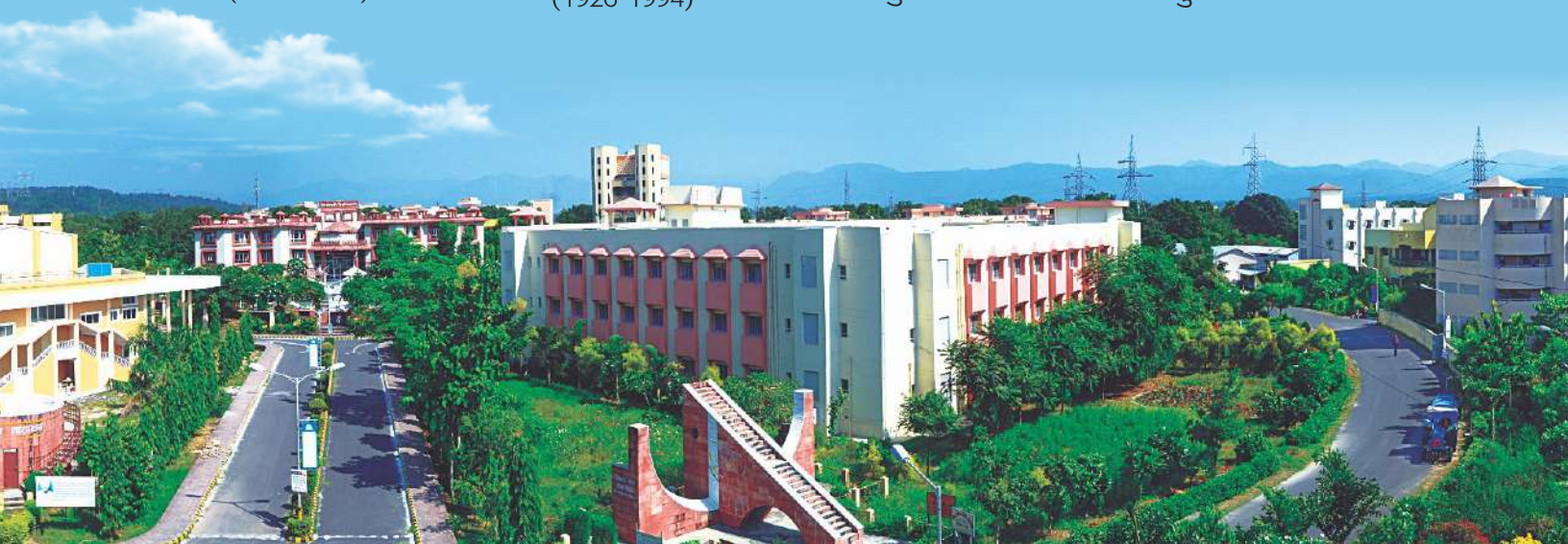

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
01. सम्पादकीय	05
02. आत्मनिर्भर भारत के विकास में ग्रामीण पर्यटन का योगदान	06
03. सामाजिक समस्वरता में अनुशासन का महत्त्व	08
04. प्रकृति के मौन स्वर	10
05. यह मूड ऑफ़ क्यों हो जाता है	12
06. एक आत्मा निर्भर साधक की नियति	14
07. आत्मनिर्भर भारत की नींव का पत्थर 'स्वावलम्बन' और सुसंस्कृत भारत का मूलाधार 'आत्मनिर्माण'	16
08. आध्यात्मिक पर्यटन- एक आन्तरिक यात्रा	19
09. कलातन्त्र का आधार एवं उद्देश्य	21
10. प्रकृति का प्रहार एवं मनुष्य का सामञ्जस्य & कोविड १९ के सन्दर्भ में	23
11. ऑनलाइन शिक्षा - एक प्रयास, एक आवश्यकता	25
12. आत्मनिर्माण की जीवन साधना	27
13. युग का निर्माण फिर-फिर हृदय में विश्वास फिर-फिर (कविता)	29
14. अब डायरी नहीं होती (कविता)	30
15. एकोहम् बहुस्यामि का संकल्प (कविता)	31
16. Indian media in Covid Pandemic	32

घर घर यज्ञ
घर घर संस्कार
घर घर गंगा
घर घर हरिद्वार
हर घर कुंभ (2021)
आपके द्वार पहुँचा हरिद्वार

सम्पादकीय

मन की मुँड़ेर पर बैठकर ईश्वरीय प्रयोजन और नियोजन देखना सुखद भी है और सरल भी। इन दिनों ईश्वरीय चेतना के संवाहकों की अपनी निर्णायक भूमिका समुपस्थित है। आज की परिस्थितियों को दोष देना सरल है और उनके दास बनना, तो सिर्फ दुःख का उपागम ही बनेगा। क्या बेहतर हो हम अपने मन को, अपना मित्र बनाकर जीवन की उपलब्ध नवबेला में, सृजन में लग जायें। ईश्वरीय चिन्तन को निरन्तर ग्राह्य करने हेतु तत्पर हों और अपनी सोच, समझ और व्यवहार के दायरे में श्रेष्ठता का वरण करें। ऋषिसत्ता की सूक्ष्म रश्मियाँ, नित-नयी संभावनाओं के साथ हमें उबारने को तत्पर हैं। यह तो हमारी ही तन्द्रा है, जो टूटने से बाज नहीं आ रही। यह तो अपना ही प्रमाद है, जो हमें अग्रसर होने से रोक रहा है।

आहत से अनाहत की यात्रा के हम सभी बटोही हैं। इस पथ पर हमें कई मील के पत्थर मिलते हैं, परन्तु पथ, पत्थर और पथिक तीनों की अपनी नियति है। एक पूर्व निर्धारित योजना के अंतर्गत, तीनों एक-दूसरे के सम्बल भी हैं और सहभागी भी। इन तीनों की अपनी विशेषताएँ होते हुए भी, कोई भी किसी से श्रेष्ठ होने की होड़ में नहीं लगता। हाँ! एक दूसरे के हाल- चाल पूछकर, हौसला जरूर बढ़ा देते हैं। पथ की प्रासंगिकता, पथिक को राह और मील के पत्थर को स्थान देने की है। मील का पत्थर - पथ और पथिक के निमित्त, अपने आप को अहर्निश प्रस्तुत करता रहता है। और पथिक तो सतत् अनवरत, जन्म - जन्मान्तरों की यात्रा पर अग्रसारित होते हुए भी, पथ और मील के पत्थर के प्रति नतमस्तक है। यही जगती की खूबसूरती है, जो मौन होकर भी नित नए सरंजाम जुटाती रहती है। सदैव एक नूतन उत्साह, नैसर्गिक उमंग और परस्पर सामञ्जस्य के कारण ही, जगती का सौन्दर्य शाश्वत और सर्वग्राह्य है। यह एक सीखने और सिखाने की प्रक्रिया है, जहाँ हम जगती से सिर्फ लेने का भाव ना रखें, वरन अपने कृत्यों और कर्तव्यों से कुछ लौटाने को भी तत्पर हो।

वसन्त की दस्तक अब सुनाई देने लगी है। इन दिनों चहुँ ओर हुलसन, उमंग और जोश देखा जा सकता है। ठण्ड की मीठी बयार भी जैसे साथ हो चली है। गुरुचेतना के निर्देशनों में, आपसी प्रेम, स्नेह और सहकार की त्रिवेणी में गोते लगाने को, महाकुम्भ २०२१ भी अब आ गया है। नव-वसन्त की इस वेला में अनाहत का तीसरा अंक सुधि पाठकों तक पहुँच रहा है। इस ज्ञान-प्रयाग की त्रिवेणी में स्नान करने से, मन के कलुष और अंतस् के दुर्भिक्षों का स्वतः निवारण हो जायेगा। ऋषिप्रणीत विचारों की अमृत बूँदों से, मन में उत्साह और उमंग उठना लाज़मी है।

"घर- घर कुम्भ और हर घर हरिद्वार" के **मन्त्र का उद्घोष, शान्तिकुञ्ज हरिद्वार से हो चुका है।** यह सृजन पुष्प - अनाहत तभी सार्थक होगा जब युगऋषि के चैतन्य विचारों से हम एकाकार होते हुए, अपने जीवन में अंगीकार करें। नव-वर्ष की मंगलवेला में समस्त गायत्री परिजनों, पाठकों को गुरुसत्ता का स्नेह-आशीर्वाद प्रेषित है - स्वीकारें।

-ब्रह्मवर्चस

आत्मनिर्भर भारत के विकास में ग्रामीण पर्यटन का योगदान

- डॉ. उमाकांत इंदौलिया (विभागाध्यक्ष, पर्यटन प्रबंधन विभाग)

भारत प्राचीनतम सभ्यताओं वाला एक देश है। यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति, प्राचीनकाल से समृद्ध रही है। दुनिया में शायद ही कोई ऐसा देश होगा जहाँ इतनी भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता देखने को मिले। हरे-भरे खेत, हिमखण्ड, मरुभूमि, सागर की लहरें, प्राकृतिक व सांस्कृतिक परिवेश सभी कुछ तो है, जो कि पर्यटकों को आकर्षित करता है। देश के सुदूर गाँवों में प्राकृतिक व ऐतिहासिक सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। गाँव की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, प्राकृतिक सान्निध्य, शांत व पवित्र जीवन शैली, भारत में ग्रामीण पर्यटन को, विपुल संभावनाओं वाला क्षेत्र बना देता है। ग्रामीण संस्कृति से परिपूर्ण देश-भारत में ग्रामीण पर्यटन सम्पन्नता के नित नए द्वार खोल सकता है। जहाँ एक तरफ यहाँ के स्थानीय लोगों को रोजगार मिलेगा, वहीं दूसरी ओर विभिन्न संस्कृति, भाषा, जीवनशैली के लोगों को एक-दूसरे के करीब लाकर हमारी राष्ट्रीय एकता को मजबूत करेगा। यही सब ग्रामीण पर्यटन की विशेषताएँ, आत्मनिर्भर भारत को बनाने में योगदान दे सकती है।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार हर ग्रामीण क्षेत्र में कुटीर उद्योग को हर घर में स्थान मिले, हर खाली हाथ को काम मिले। यह परिभाषा आत्मनिर्भर भारत बनाने में गाँव की भूमिका को प्रदर्शित करती है। गाँव को सम्पूर्ण आत्मनिर्भर बनाए बिना, आत्मनिर्भर भारत की कल्पना नहीं की जा सकती है। आत्मनिर्भरता एक वरदान है जो कि ग्रामीण पर्यटन से सहजता से हस्तगत किया जा सकता है। अपने हाथों द्वारा, जहाँ अपने ही लोगों की सेवा होगी वहीं दूसरी तरफ ग्रामीणों को रोजी और रोटी के लिए दूसरों का मुँह भी नहीं देखना पड़ेगा। आत्मनिर्भर भारत बनाने में ग्रामीण पर्यटन, गाँवों के विकास के लिए अत्याधिक कारगर है। इससे ग्रामीणजनों के हुनर को बाजार मिलता है। वहाँ का लोकसंगीत, लोककलाएँ, हस्तकलाएँ, दस्तकारी व स्थानीय उत्पादों की बिक्री कर ग्रामीण पर्यटन के द्वारा बाह्य लोगों व पर्यटकों तक इन उत्पादों का विक्रय किया जा सकता है। इससे ग्रामीण जनों व पर्यटकों को सीधे तौर पर लाभ मिलेगा।

ग्रामीण पर्यटन से ग्रामीणजनों में उद्यमिता का विकास करने के साथ-साथ, उनकी आय के अतिरिक्त स्रोतों का विकास किया जा सकता है। ग्रामीण पर्यटन गाँवों में मौजूद वहाँ की कला, संस्कृति, हस्तनिर्मित उत्पादों, शुद्ध पर्यावरण और बेमिसाल धरोहर को संरक्षित कर भारत देश को आत्मनिर्भर बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। बशर्ते कि इस दिशा में सरकार, स्थानीय लोगों व एन.जी.ओ. द्वारा सुनियोजित तरीके से प्रयासों का क्रियान्वयन किया जाए। इन्सान की आत्मनिर्भरता, सामाजिक विषमता को भी दूर करेगी और व्यक्ति को आस्थावान् और उत्कृष्ट भी बनायेगी। क्या बेहतर हो हम आत्मनिर्भरता को ग्रामीण पर्यटन से हस्तगत करने का

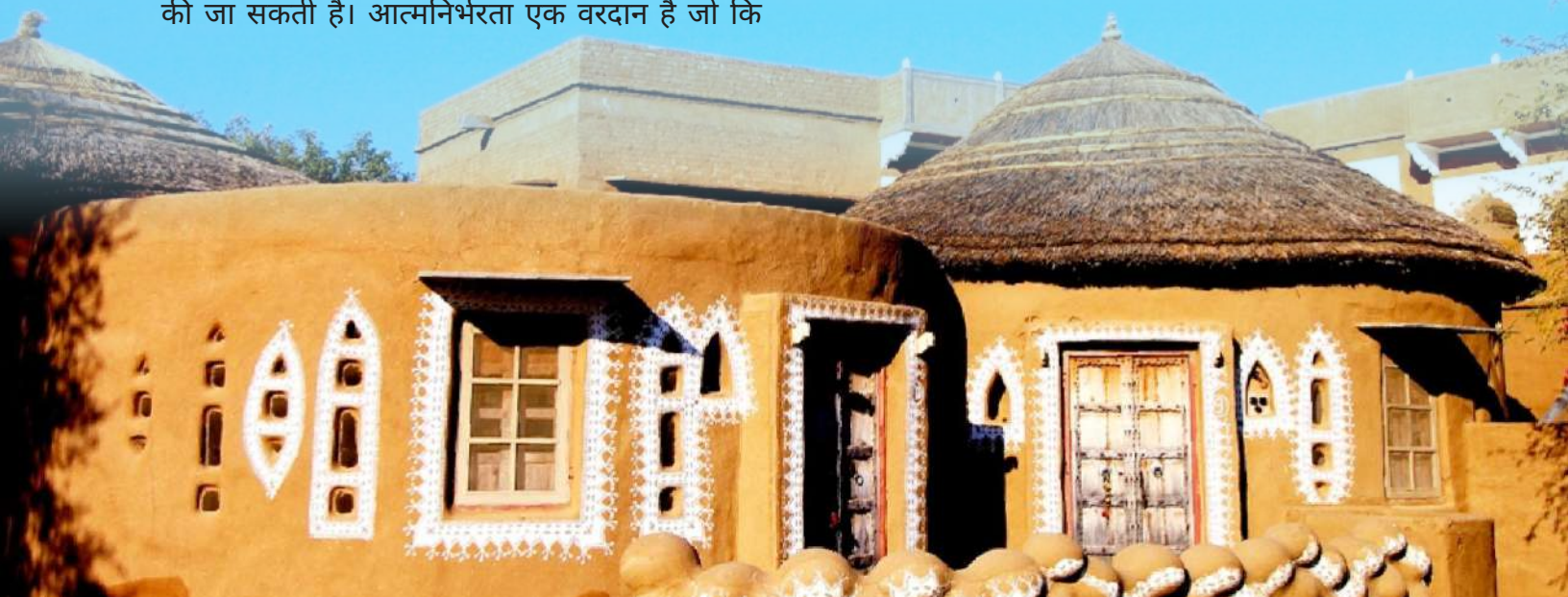

प्रयास करें। जहाँ इससे गाँव में नयी चेतना प्रवाहित होगी, वहीं गाँव के मेहनतकश और ईमानदार लोगों में अपने प्रति सम्मान का भाव भी जागृत होगा।

'महात्मा गांधी' ने एक बार कहा था कि भारत गाँवों में बसता है। भारत का ग्राम्य जीवन "असली भारत" की तस्वीर प्रस्तुत करता है। हमारे गाँव देश की संस्कृति और परम्पराओं का खजाना है। आत्मनिर्भर भारत बनाने में ग्रामीण पर्यटन के विकास के लिए सबसे जरूरी है- ग्रामीणों के बीच जागरुकता बढ़ाना और देश- विदेश में ग्रामीण-पर्यटन की कुशल मार्केटिंग को करना। सफल मार्केटिंग रणनीति से ग्रामीण पर्यटन की माँग तेजी से बढ़ेगी, साथ ही हमें अपना आधारभूत ढ़ाँचा भी विकसित करना होगा, ताकि जब पर्यटक गाँवों में आयें तो उनके लिए अच्छी सड़कें हो, उचित ठहरने का आवास हो, स्थानीय टूरिस्ट गाइड हों, जो उस पर्यटक को वहाँ के दर्शनीय स्थलों व लोक-संस्कृति से भली- भाँति अवगत करा सकें।

वर्तमान में भारत सरकार - आत्मनिर्भर भारत को मूर्त रूप देने के लिए पूरी तरह से सजग है। माननीय प्रधानमंत्री जी स्वयं अपने भाषणों में अक्सर पर्यटन विकास के महत्व पर बोलते हैं। इसी हेतु ''स्वदेश दर्शन" योजना प्रारम्भ की गई है, जिसमें थीम आधारित 13 पर्यटन सर्किट विकसित किये जाऐंगे। ग्रामीण सर्किट भी इन 13 सर्किटों में से एक हैं। भारत सरकार द्वारा गाँव के लिए अन्य योजनाएँ जैसे - स्किल इण्डिया, स्वच्छ भारत अभियान, सांसद आदर्श ग्राम्य योजना, नेशनल रूरल इम्पालॉयमेन्ट प्रोग्राम (एन.आर.ई.एफ.), नेशनल रूरल हेल्थ मिशन, अन्त्योदय योजना, हृदय योजना, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजनाओं की शुरुवात की गयी है। ये सभी सरकार की योजनाएँ - ग्राम विकास व ग्रामीण पर्यटन को विकसित करने में अपना योगदान दे रही हैं।

आत्मनिर्भरता स्व के जागरण का भी मंत्र है। अपने प्रति ईमानदारी, अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठा और लगन, अपनी सेवा के प्रति सजगता और सहजता का मूल मंत्र - आत्मनिर्भरता ही तो है। इस प्रकार आत्मनिर्भर भारत बनने में समृद्ध गाँव, सशक्त गाँव, विकसित गाँव ही सशक्त माध्यम होंगे व भारत में समृद्ध गाँव ही आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना को पूर्ण व चरितार्थ कर सकते हैं।

सामाजिक समस्वरता में अनुशासन का महत्त्व

- सुश्री नेहा सिंह (प्रवक्ता, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग)

प्रत्येक कार्य को पूरा करने, लक्ष्य प्राप्त करने व उद्देश्य की पूर्ति के लिए सुनिश्चित मर्यादाओं का पालन करना पड़ता है। उन मर्यादाओं के अभाव में व्यक्ति सहित समाज भी लक्ष्यविहीन, अस्त-व्यस्त और दिशाभ्रष्ट हो जाता है। व्यक्ति ही नहीं वरन् जड़ और चैतन्य जगत्, जिसे ब्रह्माण्ड कहा जा सकता है, के सभी घटक अपनी-अपनी मर्यादाओं और नियमों में बंधे हुए हैं। सूर्य, पृथ्वी, चंद्रमा, ग्रह, उपग्रह सभी एक व्यवस्था और विधान के अनुसार चलते हैं। संसार की हर छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी वस्तु, घटना तथा प्रक्रिया एक निर्धारित नियम से चलती और कार्य सम्पादित करती है। मनुष्य भी उस नियम से अलग नहीं रह सकता। उसे भी अपनी प्रत्येक गतिविधि को नियंत्रित, नियमित और व्यवस्थित रखना पड़ेगा। अनुशासन इसी का नाम है।

अनुशासन का निर्धारण इसलिए आवश्यक होता है कि प्रत्येक व्यक्ति के अपने हितों की रक्षा होती रहे। अनुशासन का इतना ही अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी सीमा और परिधि में कर्तव्यों का पालन करते हुए अपने अधिकारों का उपयोग करें। अधिकार की रट तो सभी लगाते हैं, परन्तु अधिकारों के साथ कर्तव्य और दायित्व भी अनिवार्य रूप से जुड़े हैं। अनुशासन तो एक अणुव्रत है जिसे व्यक्ति, समष्टि की सार्थक रचना को सुव्यवस्थित और सुविकसित करने के लिए लेता है और फिर उसका अनुपालन वह यथाशक्ति करता रहता है। अनुशासन को सामाजिक समस्वरता की पदचाप भी कह सकते हैं, जहाँ सभी के लिए एक निर्धारित आकाश हो, जिसमें वह अपनी इच्छा से, अपनी निर्धारित सीमा में रहते हुए, अपने कर्मों का निर्वहन कर सकें। स्वतंत्रता के मुखरित प्राणों से अपने आप को नित- नयी ऊँचाइयों तक लेता जाए और अपनी जीवन शैली से औरों में भी नूतन प्राण प्रवाहित करें।

व्यक्ति अपने दायित्वों का पालन करते हुए ही निज अस्तित्व को सुरक्षित तथा बाह्य स्थिति को सुव्यवस्थित बनाये रह सकता है, अन्यथा उद्दण्ड और उच्छृंखल प्रवृत्ति के लोग अपनी आवांछनीय हरकतों से समाज में अस्त-व्यस्तता फैला सकते हैं। लोकविदित है कि वनवास के समय भगवान् राम जब स्वर्ण-मृग की खोज में गए तो माता सीता की सुरक्षा लक्ष्मणजी के हाथ में दे गए थे। और जब लक्ष्मणजी को भी श्रीरामजी की सहायता के लिए जाना पड़ा, तो उन्होंने एक लक्ष्मण रेखा खींची और माता सीता को हिदायत दी कि वह उससे बाहर ना जाएँ। लेकिन जैसे ही सीता माता ने वह लक्ष्मण रेखा पार करी तो रावण (कुरीति) ने मानवता रूपी सीता माता का हरण कर लिया।

वस्तुतः मनुष्य आसुरी और दैवी सत्ता के बीच का सेतु ही तो है। उसमें पशुता के गुण भी बीजरूप में उतने ही विद्यमान हैं, जितने कि उत्कृष्टता के। उसमें चेतना के जागरण के स्वर भी मुखरित हो सकते हैं और अगर वह मूढ़मति हो जाये तो समूची मानवता के लिए भस्मासुर भी बन सकता है। जब व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए, दूसरों को भ्रमित करता है, तो असामाजिकता की ओर अग्रसर हुई उसकी गतिविधियाँ संदिग्ध और खतरनाक हो जाती है। जब व्यक्ति सामाजिक और नैतिक नियमों, मर्यादाओं को तोड़ता है तो भले ही उसका तात्कालिक प्रभाव नहीं दिखाई दे, लेकिन उसका दुष्परिणाम तो उसे भुगतना ही पड़ता है। व्यक्ति सबको धोखा दे सकता है पर अपने आप से कब तक भागेगा? ऐसे लोगों की अंतिम परिणिति बड़ी ही वीभत्स और कुरूप होती है। जहाँ एक ओर ऐसे लोग जग-उपहास का कारण बनते हैं, वहीं दूसरी तरफ वह अपनी नजरों में भी गिर जाते हैं।

अनुशासन को शरीर का प्राण समझ लीजिये। हृदय का स्पंदन हो, या रक्त वाहनियों द्वारा रक्त संचार, फेफड़े की क्रियाशीलता हो या मस्तिष्क की प्रखरतम् कसरत, सभी कुछ स्वानुशासन में चल रहा है और जैसे ही यह अनुशासन हटता है, इंसान को दिन में तारे नजर आने लगते हैं। अच्छा खासा चलता फिरता इन्सान निष्प्राण हो जाता है। कदाचित् अंतरात्मा की प्रेरणा किसी को नहीं सुनाई देती हो, क्योंकि स्वच्छ, स्पष्ट ओर स्फटिक हृदय में ही उसकी अनुभूति होती

है। ज्यों- ज्यों हृदय निर्मल और शांत होता जायेगा, अंतस की आवाज सुस्पष्ट होती चली जाएगी। गोसाईं जी ने ठीक ही लिखा है कि **'निर्मल मन जन सो मोहि पावा, मोहि कपट छल छिद्र न भावा'** यानी जो मनुष्य जितना मन से निर्मल होगा, वह उतनी ही जल्दी ईश्वर को प्राप्त कर सकता है और जो जितना ज्यादा छल और कपट का वरण करेगा, वह परमात्मा से उतना ही दूर होता चला जायेगा।

समाज को दिशाधारा और निर्देशन देने के लिए समय-समय पर अवतार, संत, सुधारक और शहीद का आगमन होता रहा है। विश्ववसुधा को मार्गदर्शन प्रदान करने वाले प्रकाशपुंज, उसका नियंत्रण करने वाले मनीषी, अनुशासन का पाठ नियमित पढ़ाते आये हैं और पढ़ाते ही रहेंगे। देश में कानून और नागरिकों के नैसर्गिक विकास के लिए नियम, कर्तव्य तथा नैतिकता के सिद्धांत सिर्फ इसीलिए बनाये गए हैं।

समाज में समस्वरता नितांत आवश्यक है। कई बार इंसान स्वार्थवश प्रलोभनों और बहकावे में आ जाते हैं। स्वार्थ के कारण हो या किसी के बहकाये जाने पर, अनुशासन का उल्लंघन किसी कीमत पर नहीं होना चाहिए। इन अनुशासनों का पालन करने पर ही व्यक्ति और समाज की प्रगति व उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है। बेहतर हो हम अनुशासन का पाठ ना पढायें; बल्कि उस पर स्वयं चलकर दिखायें। हम अगर ऐसा कर सकें तो लोगो के समक्ष, हम एक श्रेष्ठ, नैष्ठिक और देशभक्त इन्सान को प्रस्तुत कर पायेंगे, साथ ही इस जगत् में अपने आने की सार्थकता को सिद्ध कर पाएंगे।

क्या बेहतर हो की ऋग्वेद की यह ऋचा **"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते"** हमारे जीवन में उतर जाये और अनुशासन का अनुपालन करते हुए हम नैसर्गिक विकास पथ पर अग्रसर हों।

प्रकृति के मौन स्वर

- डॉ. अरुणेश पाराशर (विभागाध्यक्ष, पर्यटन विभाग)

प्रकृति के मौन स्वर जब भी किसी व्यक्ति में प्रस्फुटित होते हैं तो उसकी भावदशा एवं दिशा स्वतः परिवर्तित हो जाते हैं। प्रकृति कुछ कहने लगती है, जिसे सिर्फ अंतर्मन से सुना जा सकता है। प्रकृति के भाव स्पंदन को, हृदय की गहराइयों में महसूस किया जा सकता है। इसकी भाषा आहत नहीं, अनाहत के मर्म को लेकर उपजती है। परा और पश्यन्ती वाणी में यह मौन, अंतरंग पर रहस्मयी बादलों की तरह उमड़ता- घुमड़ता रहता है और मानवीय जीवन को नयी दिशा देता हुआ चला जाता है।

मानव जीवन के दो पक्ष हैं **"बाह्य एवं आन्तरिक"**। बाह्य जीवन तो जन्म होने के साथ ही समाज के द्वारा प्रदत्त किया जा रहा है। इंसान के बचपन से लेकर उसके अंत तक हम सभी को सामाजिक जीवन की शिक्षा मिलती रहती है। वहीं हमारा आंतरिक जीवन, हमें जीवन निर्माण की परिस्थितियाँ प्रदान करता है। जिस पर सूक्ष्मता से ध्यान देने की आवश्यकता होती है। जीवन की इस आपाधापी में, हमारा आन्तरिक जीवन पूर्णता के आभाव में आहत होता रहता है। आंतरिक जीवन पर तमस का प्रभाव रहता है और इसी कारण अंतर- जगत् स्पष्टता से दृश्यमान नहीं हो पाता है और जब हम शांत होते हैं तब उसकी कुछ झलकियाँ हमें मिलती रहती हैं।

प्रकृति के साथ तारतम्य रखने वाला व्यक्ति, इन सूक्ष्म ध्वनियों को सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा, गहरे से समझने लगता है। वह प्रकृति के मौन स्वरों को सुनता है और इसी प्रक्रिया में, उसका अंतर्मौन बोल पड़ता है। उसका जीवन के प्रति दृष्टिकोण सुस्पष्ट सा होने लगता है। अब उसको, अपने घर की छत से खुले आकाश को देखने का मौका मिलता है। अभी तक वह बंद कमरे की खिड़की से ही दिखाई देते आसमान को पूर्ण समझ रहा था, अब वह स्वरूप परिवर्तित सा होने लगता है। इस स्थिति में उसका बोध जाग्रति की ओर अग्रसर होता है और उसकी विवकेशीलता बढ़ने लगती है।

परम पूज्य गुरूदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी कहते हैं कि अंतर मौन से परिवर्तन के महान क्षण समुपस्थित हो जाते हैं। व्यक्ति अपने सामान्य जीवन को असमान्य बना देता है। उसका जीवन ही देवता हो जाता है।

वह सुनसान के सहचरों से, अपने जीवन की भाव-दिशा व दशा को सकारात्मक अवसरों में बदलकर, जीवन-निर्माण के सभी शिखरों पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। जिससे मनुष्य व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण व समाज निर्माण के पायदानों से होता हुआ, चेतना के शिखर की प्राप्ति करता है। इन सभी प्रक्रियाओं में प्रकृति के मौन स्वर, उसे संभालते हैं। यही स्वर उसे आत्मबल प्रदान करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं कि प्रकृति के सान्निध्य में, जीवन की रचनात्मकता का पूर्ण विकास होता है। प्रकृति हमें हमारा स्वभाव प्रदान करती है। प्रकृति हमें, अपने ही करीब ले आती है। इस मिलन-बिन्दु पर हम अपने से, अपना ही साक्षात्कार करते हैं। उस समय हमें हमारे मूलभूत स्वरूप का बोध होता है। इस स्थिति में यह अहसास होता है कि हम इस बाहरी यात्रा में कितनी दूर निकल आये हैं कि हमें अपने आंतरिक स्वरूप की सुध तक नहीं रहती है। हमारा आंतरिक स्वरूप, हमारे भीतर ही निवास करते हुए भी, हमसे ही अनजान था। अपने सबसे करीबी 'आंतरिक मित्र' को हम जाने कहाँ-कहाँ ढूँढ़ते फिरते हैं, जबकि वह हमारे अंदर ही मौजूद होता है।

संत कबीरदास जी की चौपाई यहाँ सत्य प्रतीत होती है
"जो तिलमाही तेल है जो चकमक में आग
तेरा साँई तुझमें है, जाग सके तो जाग"

जिस प्रकार तिल में तेल एवं चकमक पत्थर की रगड़ से आग निकलती है उसी प्रकार हमारा **"आत्मतत्व"** हमारे भीतर ही विद्यमान रहता है और हमें स्वयं ही जागकर उसका साक्षात्कार करना होगा। प्रकृति के मौन स्वर हमें इस तथ्य का गहरे से आभास कराते हैं। यही स्वर हमें उस अनजानी राह पर ले जाते हैं जहाँ कदम-कदम पर एक शक्तिशाली ऊर्जा, हमारे मनोबल को संबल प्रदान करती है।

उस ऊर्जा को सिर्फ **''पथ का राही''** ही समझ सकता है। यहाँ अपनी बुद्धि एवं तर्क में अंतर्बोध की चाशनी मिलानी पड़ती है, जिससे हमारी सामान्य बुद्धि, सद्बुद्धि में परिवर्तित होकर अंर्तमन पर छा जाती है। समयानुपरान्त ब्रह्माण्डीय रहस्य सामने आने लगते हैं। इस जगह केवल और केवल, अनुभवों की शृंखला ही रह जाती है। हम अंतर्जगत् में घटती हलचलों के साक्षी बनते हैं और स्व में स्थित होने का प्रयास करते हैं, जिससे इस जीवन की दिशाधारा द्वैत से ऊपर उठकर एकत्व में स्थिर होने लगती है। साराँश में इतना ही कहना उचित होगा कि:

प्रकृति के यह मौन स्वर,
प्रकृति की रचना से फूट आते हैं ।
प्रकृति के घटते बढ़ते कदम
हमें एकत्व का बोध कराते हैं ।।

प्रकृति के इस अनाहत स्वरों को
बेशक सुनना आसान नहीं ।
लेकिन प्रकृतिमय होते ही
आत्मा की पुकार आसपास कहीं ।।

प्रकृति के मुखरित मौन स्वरों में
स्वयं परमात्मा का साथ है।।

यह मूड ऑफ़ क्यों हो जाता है

- परम वंदनीया माता भगवती देवी शर्मा

युग निर्माण योजना नवम्बर, १९९१, पृष्ठ २३-२४ (पुनर्प्रकाशित)

स्नेहसलिला परम वन्दनीया माताजी जिन्हें स्वयं परम पूज्य गुरुदेव (पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य) "माताजी" नाम से संबोधित करते थे, का जीवन श्रध्दा और समर्पण का, ममत्व-विस्तार एवं अनुदान वितरण से भरा एक ऐसी अनूठी जीवन यात्रा का परिचायक है, जो बिरले ही देखने में आता है। प्रस्तुत आलेख वन्दनीया माताजी ने "मूड ऑफ" होने के सम्बन्ध में अत्यंत ही सारगर्भित व उपयोगी चिंतन "युग निर्माण योजना" पत्रिका में सन १९९१ में प्रकाशित करवाया था, जो आज भी सामयिक है। यह आलेख सभी विज्ञजनों, शिक्षाविदों, आचार्य-आचार्याओं तथा नवयुवा पीढ़ी के लिए पठनीय, विचारणीय, अनुपालनीय एवं दिशाबोधक होगा ऐसा हमें विश्वास है।

यहाँ आजकल एक नया रोग चला है। उस रोग का नाम है- "मूड ऑफ होना"। आधुनिक समय के सभ्य व शिक्षित कहे जाने वालों में प्राय: अधिकांश इससे ग्रसित हैं। उनको यह कहते हुए सुना जा सकता है कि आज तो अमुक काम कर ही नहीं सके, मूड ही नहीं हुआ। क्या करें आज तो आफिस जाने का मन ही नहीं हुआ, इस रोग की दवा किसी चिकित्सक के पास नहीं है। इसकी दवा उन्हीं लोगों के पास है, जो यह कहते हैं कि "मूड ऑफ" था। वैसे यह रोग है बड़ा भयंकर। दवा नहीं की तो जीवन को ही शुष्क, नीरस आकर्षणविहीन बना देता है।

मूड "ऑफ" होने के लक्षण कुछ इस प्रकार होते हैं। शरीर के अंगों में हल्की पीड़ा, शिथिलता व आलस्य का प्रभाव रहता है। काम करने में अनुत्साह, सिर भारी, चित्त उदास तथा मन बेचैन रहता है। यही शिकायत आज पचास फीसदी लोगों की रहती है। वस्तुत: यह हमारे अपने आपे द्वारा शरीर और मन पर लादी गयी अतिरिक्त थकान है जो निकट भविष्य में किसी न किसी व्याधि के रूप में प्रकट होती है। शारीरिक शक्ति का जितना संबंध आहार से है, उससे अधिक जीवनक्रम की नियमितता से है। जिसने इसका नियमन और निर्धारण किया है, उसे न कभी थकान अनुभव होती है, न कमजोरी। इसका मूल कारण मनुष्य की अनियमितताएँ हैं] जो मूड ऑफ होने की सांकेतिक बीमारी के रूप में प्रकट होती है।

आज के समय में अनेकों साधन जुट जाने से शरीर को तो आराम मिला है, पर मन काफी बोझिल हो गया है। वातावरण की कृत्रिमता और अर्थप्रधान युग की जटिल प्रक्रिया कुछ ऐसी हो गयी है कि मनुष्य को मानसिक आवेगों से छुटकारा नहीं मिलता। इनसे हम जितना थकते हैं, उतनी थकान श्रमशीलता से नहीं आती। प्रसिद्ध ब्रिटिश लेखक, विचारक, मनोविज्ञानी विलियम जेम्स ने अपनी पुस्तक दी एनर्जी ऑफ मैन, में अनेकों प्रकार से स्पष्ट किया है कि मनुष्य अपनी शक्ति का एक छोटा-सा अंश ही काम में ला रहा है। यदि वह सम्पूर्ण शक्ति से काम लेने की कला सीख जाए, तो वह अपने जीवन में आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ पा सकता है।

उन्होंने इन शक्तियों के ठीक से अभिव्यक्त न होने के कारणों पर विचार करते हुए कहा है-सामान्यतया संसार में दो तरह के आदमी होते हैं। एक निष्क्रिय, निकम्मे और दूसरे क्रियाशील। क्रियाशीलों की पंक्ति में आने वालों को उन्होंने पुन: दो वर्गों में बाँटते हुए कहा है कि एक के काम करने के पीछे भय समाया होता है-यथा काम नहीं करेंगे, तो अधिकारी नाराज हो जाएँगे, पता नहीं वह कैसा व्यवहार करें। यदि भयजनित समस्याएँ उन्हें घेरे रहती हैं। दूसरी स्थिति के लोग लोभ, लालच से ग्रसित होकर काम करते हैं। तरह-तरह के सपने बुनने, गगनचुम्बी कल्पनाएँ करने में जुटे रहते हैं। जेम्स के अनुसार पहली स्थिति चिन्ताजनित अवसाद को जन्म देती है। शंकाओं से घिरे रहने के कारण इसमें आधे-अधूरे मन से काम होता है। मूड की खराबी व अत्यधिक थकान ऐसी ही दशा में जन्म लेती है। दूसरी दशा में

काम होता तो दीखता है, परिपूर्ण मनोयोग के अभाव में शरीर के ज्यादा घसीटे जाने के कारण थकान व मूड की खराबी ही पल्ले पड़ती है। इन दोनों ही दशाओं में व्यक्ति की समूची क्षमताएँ अभिव्यक्त नहीं हो पाती है।

एक तीसरी स्थिति का विवेचन करते हुए मनोविज्ञानी हेराल्ड शर्मन ने अपने अध्ययन -हाउ टू लूज योर फीयर्स एण्ड फाइण्ड योर की टू हैप्पीनेस, में स्पष्ट किया है कि क्रियाशीलता को सुनियोजित एवं सुसम्बद्ध करने से इस मूड ऑफ होने के रोग से छुट्टी मिलती है। उनके अनुसार एक औसत मनुष्य अधिकतम 16 से 18 घण्टे क्रियाशील रह सकता है। यहाँ क्रियाशीलता का मतलब एक ही कार्य में खुद को लगाने से नहीं है। इस अवधि में 06-08 घण्टे उसे व्यक्तिगत जीवन की देखभाल, घर-परिवार आत्मीय संबंधियों में देने पड़ते हैं। इससे एक काम यह भी होता है कि वह हल्का होता और ताजगी प्राप्त कर लेता है। बचे हुए आठ से दस घण्टे को श्रमशीलता में नियोजित किया जा सकता है। ऐसा करना उचित भी है। शर्मन का कहना है कि प्रारम्भ में हो सकता है कि इस अवधि में लगातार काम करने में घबराहट, बेचैनी का सामना करना पड़े। उन्होंने कई प्रयोगों में इसे सच पाया।

देखा यह गया कि काम छुड़ा देने पर बेचैनी, घबराहट आदि सब गायब हो जाती है। निष्कर्ष में पाया गया है कि इसका कारण काम नहीं, श्रम मनोयोग एवं जिम्मेदारी की भावना-इन तीनों की असम्बद्धता थी। जैसे-जैसे सुसम्बद्धता आती गयी, मूड ऑफ होने की तकलीफ भी दूर हुई और क्षमताएँ भी बढ़ती देखी गयी। उन्हीं के शब्दों में जब स्वयं हम कोई काम करते हैं तो थोड़ी देर बार थकान सी -अनुभव होती है, उस समय काम छोड़कर आराम किया जाए तो थोड़ी ही देर में थकान समाप्त हो जाती है, पर यदि काम करते ही रहा जाए तो भी थोड़ी ही देर में थकान समाप्त हो जाती है। उनके अनुसार दूसरी स्थिति में थकान का अनुभव न होना, व्यक्ति की कार्य के प्रति गहरी अभिरुचि दर्शाता है। वे कहते हैं कि यदि धीरे-धीरे कार्य में रुचि जगाकर उसमें मन को लगाकर काम करने की आदत डाली जाए तो मनुष्य आश्चर्यजनक रूप से अपनी कार्यक्षमता को बढ़ा सकता है। जिन्होंने भी जीवन में इस सूत्र को धारण किया है, कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ पा सकने में सफल हुए। नोबुल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध वैज्ञानिक सी० वी० रमण ने एक स्थान पर अपने बारे में बताते हुए कहा है कि प्रारम्भ में बहुत देर तक पढ़ने से मेरा मन रह-रह कर उचट जाता था। पढ़ना चाहता था, पर मूड न बनता। आखिर एक दिन मेरे पिता ने मार्ग सुझाया। कहा- पहले पढ़ने के प्रति रुचि पैदा करो। शरीर और मन की असंतुलित दशा ही इसका प्रधान कारण है। धीरे-धीरे मैंने इसका अभ्यास शुरू किया और कुछ ही दिनों के बाद फिर कभी मन उचटने की शिकायत नहीं हुई।

बात भी सही है। क्रमबद्धता और नियमितता हमारी शारीरिक और मानसिक शक्तियों को बनाये रखने के लिए सहायक है। एक दिन बहुत काम किया, दूसरे दिन ढीले पड़े रहे, तो क्रमबद्धता टूटती है। इसका हानिकारक प्रभाव भी पड़ता है। इसी प्रकार उत्तेजित दशा में कुछ करना भी ठीक नहीं होता। हमारे क्रियाकलाप वर्ष भर बहने वाली सरिता की तरह अविरल रूप से एक गति में होने चाहिए न कि बरसाती नाले की भाँति, जो चार दिन तो किनारों को तोड़ता-फोड़ता बहता है और बाकी दिन सूखा पड़ा रहता है। अनियमितता और क्रमहीनता मनुष्य की शक्तियों को वैसे ही चुका देती है, जैसे बरसाती नाला।

मनोविज्ञानी नैपोलियन हिल अपने अध्ययन 'थिंक एण्ड ग्रो रिच' में इसका एक और कारण बताते हैं-वह है शारीरिक और मानसिक श्रम में सामन्जस्य न होना। प्राय: दिन भर दफ्तर में काम करने वाले कर्मचारी, अधिकारी मानसिक श्रम तो करते हैं, पर शारीरिक श्रम की उपेक्षा कर देते हैं। इस असंतुलन के कारण मूड ऑफ होने की बीमारी ही उनके पल्ले पड़ती है। चाहे एक्स-रे के आविष्कारक रोएण्टजन हों या साहित्यकार अर्नाल्ड तायनवी किसी के भी जीवन का अध्ययन करें, तो पायेंगे उन्होंने व्यस्त मानसिक कार्यों के साथ-साथ शारीरिक श्रम को भी महत्त्व दिया।
हम अपने जीवन में भी यह कर सकते हैं। यदि हमारा काम मानसिक है तो थोड़ा-सा शारीरिक श्रम चाहें वह खेलकूद हो या वाटिका में फूल-पौधे ठीक करना, यह हमारे मूड को हल्का-फुल्का बना देंगे। यदि काम शारीरिक श्रम संबंधी हो तो रचनात्मक साहित्य का अध्ययन बिगड़े मूड को ठीक कर देगा और वह अडियल टट्टू की तरह जहाँ-तहाँ अड़ना बंद कर देगा। यदि हम कार्य में श्रम, मनोयोग एवं जिम्मेदारी की भावना का सम्मिश्रण करना तथा जीवनक्रम का सुनियोजन करना सीख जाएँ तो हमारी क्षमता कई गुनी विकसित हो सकती है और कार्य का स्तर भी बढ़ सकता है। पिछड़ापन तो दूर होगा ही साथ ही मूड खराब होने की शिकायत भी न रहेगी।

एक आत्मा-निर्भर साधक की नियति

- देवसंस्कृति

उमड़ते- घुमड़ते घटाटोप के मध्य, मेरी खुद से मुलाकात। जीवन की बहती धाराओं का एक मात्र ठिकाना। जब भी मन दुःखी या व्यथित होता है, तो माँ गंगा की गोद में आ बैठता हूँ। पतित - पावनी माँ गंगा की अविरल धारा, मानो अपने बहने का राज बताकर दुलराती है - हे विशुद्धानन्द! व्यर्थ की है यह उहापोह और भटकन। देखो मुझे और कुछ सीखो - जितनी भी मेरे रास्ते में रुकावटें आती हैं, बड़ी- बड़ी चट्टानें, हिमशिखर सबको मैं उत्साह से लाँघती - कूदती मैदान तक आ जाती हूँ और तब तक नहीं रुकती हूँ, जब तक गंगासागर से एकाकार नहीं हो जाती। मेरी हर लहर, हर एक बूँद का बस यही सपना है - उस परमात्मतत्व से एकाकार होना, और तुम्हारा नाम तो विशुद्धानन्द है। जरा नाम की सार्थकता को सिद्ध तो करो।

मैं फिर सोच में पड़ गया कि आखिर महाराज जी को क्या सूझी, जो मुझे यह नाम दे दिया? विशुद्ध, आत्मा और आनन्द, इन तीन त्रिवेणियों के मध्य मुझे मझधार में बेशक फँसा कर ही माने। विशुद्ध - जो शुद्धत्ता की पराकाष्ठा हो। चिंतन, चरित्र और विचारणा की विशुद्धता की जानकारी मुझे थी। आत्मा को जानने की उत्सुकता ही तो मुझे इस पथ पर खींच लाई। आत्मा की खोज का बटोही बनना, कहाँ सबके नसीब में होता है और आनंद के तो कहने ही क्या? जो मस्ती और उमग फकीरी में है वह और कहाँ? यह आकाश अपना घर, धरती बन गयी बिछौना और माँ गंगा का आँचल, एक साधु को इससे ज्यादा और क्या चाहिए? पर यह प्रश्न जो माँ गंगा कह गयी कि क्या मैंने अपने नाम को सार्थक किया? या फिर एक और साधु की तरह मैं भी अपने दिन काट रहा हूँ कहीं भीतर घर कर गया।

यह तो चेतना की यात्रा है, न जाने कितने मोड़, कितने चौराहों पर अपनों और सपनों से दो-चार कराया। सोच और समझ से परे, आत्मा के खोज की हुलसन पैदा की। ज्ञान की विभिन्न धाराओं में गोते लगवाए। कितने मठ, आश्रम और सन्तों के साथ रहने का अवसर दिया। पर विशुद्धानन्द की प्यास तो आज भी अधूरी- सी प्रतीत हो रही है। क्या आत्मा अभिमुख होकर स्वप्नपूर्ण होगा? या आत्मनिर्भरता का कोई पथ प्रदर्शक मिलेगा? या आत्म-प्रकाश की ओर कदम उन्मुख कर पाऊँगा? पता नहीं कब आँख लग गयी और स्वप्नलोक में चला गया। कुछ धुँधला- सा याद पड़ रहा है। अरे! ये तो महाराज जी हैं। इतने वर्षों बाद, आज इनके पुनः दर्शन हो रहे हैं। यकीन ही नहीं हो रहा कि क्या वाकई इतने बरसों पूर्व, किसी ने महासमाधि ले ली हो और वह आपके सामने रूबरू खड़ा हो जाये, तो आश्चर्य तो होगा ही ना।

महाराज जी की वही निश्छल हँसी। खिलखिलाता चेहरा- बड़ी सी जटायें, घनी-सी दाढ़ी और मोतियों से चमकते दाँत। मानो उत्साह और उमंग की जीती- जागती मिसाल। दोहरा कसरती बदन और सफ़ेद बड़ा-सा चोला - मानो समूची जगती के दुःखों को उस में ओढ़ रखा हो और मुसकान से सभी के कष्टों को हरने का वही भरसक प्रयास। सच भी है वह साधु ही क्या, जो दूसरों के चेहरे पर मुसकान ना ला सकें। वह साधु ही क्या, जो जगती के ऋण से उऋण होने के लिए लोकसेवा में ना खपें। आज भी इतने बरसों के पश्चात महाराज जी के किस्से आम हैं। शरीर में रहते हुए और देह त्याग के पश्चात् भी, दुःखी मानवता के त्राण को संकल्पित महात्मा उनके जैसा विरला होगा। महाराज जी को देखकर ख़ुशी भी थी और खुद से खुद के प्रति नाराजगी भी। एक संकोच भीतर उमड़ रहा था कि विशुद्धानन्द क्या कभी, विशुद्ध - आत्मा के आनन्द को हस्तगत कर पायेगा?

पर कहते हैं की सिद्ध साधक दूसरों के मन को बेहतर पढ़ लेते हैं। उनसे कुछ भी छुपाया नहीं जा सकता। उनकी बात ही कुछ और होती है जो हृदय में प्रवेश करके, दूसरों की आत्मा का हाल जान आते हैं। काश! यह सिद्धि मुझे भी मिल जाये, कुछ ऐसा विचार मन में उभरा ही था। तभी एक रौबीली आवाज मेरे कानों में गूँजी - विशुद्धानन्द क्यों चिन्ता करते हो? जिसने साँसें दी है वह मुक्ति भी देगा। जिसने सन्यास दिलाया है, वह समयक न्यास भी कराएगा। वैसे भी तुम

अपना तर्पण तो कर ही चुके हो? और जो देह-भाव से ऊपर उठ गया हो, वह सांसारिक बंधनों से आजाद है। देखो विशुद्ध-आत्मा वह है, जो अपनी सोच और समझ को परमात्मा में नियोजित कर दें। अपने आप को आत्मनिर्भर बनाये। सांसारिक लोक, सामाजिक बँधनों से मुक्त होना सरल तो नहीं है पर यहाँ आत्मनिर्भरता की बात है। और जो आत्माभिमुख होकर जीना सीख जाता है, वह आत्मा पर राज करता है। जन्म-जन्मान्तरों की विशिष्ट यात्रा पर निकला बटुक तो संस्कारों से ग्रसित होता ही है; पर उसके भीतर आत्मनिर्भर बनने की समझ और उसका क्रियान्वन सरल नहीं है।

सत्य कहा गया है कि आत्मनिर्भर होने से तो यात्रा शुरू होती है और उसका अंतिम पड़ाव है आत्मा-निर्भर व्यक्तित्व। आत्मनिर्भर यदि पहली सीढ़ी है तो आत्मा-निर्भर उसका शिखर। यही तो वह सतत अनवरत यात्रा है, जिस पर हर आत्मा को चलना पड़ता है। यहाँ अवलम्बन किसी का भी हो, वह परावलम्बी बनाएगा ही। चाहे वह व्यक्ति का हो या वृत्ति का, या फिर स्वयं परमात्मा का, अवलम्बन तो नहीं होना चाहिए। वह लोकोक्ति भी सोलह आने सच रही होगी " पाछे लागे हरि फिरै ,कहत कबीर कबीर"। स्वयं श्रीहरि भी जिससे मिलना चाहे या जिसका अनुसरण करें, वह साधारण आत्मा तो बेशक नहीं होगा।

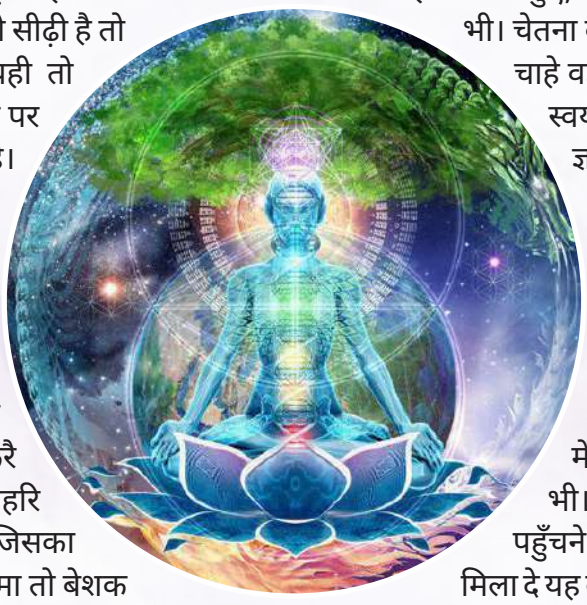

आखिर कौन हो सकता है वह खुशनसीब? शायद वही तो होगा आत्मा-निर्भर इन्सान। चेतना के आरोहण पर स्थित, चित्त में सदाशयता का सागर समाहित किये हुए, लोकहित में अपनी अस्थियों के दान करने की दधीचि जैसी उदारता समेटे, सूर्य जैसा प्रकाशवान, वेदों की तरह ज्ञानवान व्यक्तित्व का धनी, क्या धरती पर मिलेगा? यह सत्य है कि हर साधु में आत्मनिर्भरता भरी होती है। न्यूनतम में ख़ुशी-ख़ुशी गुजारा करना आत्मनिर्भरता का पहला मुकाम है। आत्मनिर्भर व्यक्तित्व को एक विश्वास है कि परमात्मा उसे कुछ ना कुछ अवश्य देगा। ईश्वर-अवलम्बन की पाठशाला में आत्म-निर्भरता का पहला पाठ पढ़ाया जाता है। कण्ठी, माला, आरती, केश, वेश और विन्यास तो आत्म-निर्भर की डुगडुगी हैं। यह तो वह बंधन है जिन्हें आत्माभिमुख होने से पहले छोड़ना पड़ता है। बाहरी आडम्बरों से आंतरिक उजास कब और कौन पा सका है। व्यर्थ की बाजीगरी से तो बचना ही होगा।

आत्मा तो परमात्मा का बिम्ब है। आत्मा वह झरोखा है जिसमें परमात्मा परिलक्षित होता है। आत्मा वह चिराग है जिसमें ईश्वर स्वयं, तेल के रूप में जलता है। एक प्रकाश को फैलाने को, एक डिम्ब में बिम्ब विकसाने को, एक दर्पण में प्रतिबिम्ब उभारने को। पर शर्त यहाँ भी वही है कि परावलम्बन से निकलकर, आत्माभिमुख होकर, स्वतः रास्ता तय करना होगा। आत्मा के साथ-साथ अपने मैं का तिरोहण करते हुए, यात्रा सुखद भी है और बोधगम्य भी। चेतना के इस शिखर से द्रष्टा की हर छवि चाहे वह जीव हो या जगत् , माया हो या स्वयं ब्रह्म, सभी प्रकाशित दिखते हैं। ज्ञान की मशाल को स्वयं थामना पड़ता है। इसके लिए शरीर का सौष्ठव भी चाहिए और मन की निर्मलता भी। यहाँ स्वयं के प्रति विश्वास भी चाहिए और ईश्वर अवलम्बन भी। मैं से हम की यात्रा और फिर हम से परब्रह्म की यात्रा में, रोमांच भी है और नैसर्गिकता भी। शून्य से शुरू होकर अनन्त तक पहुँचने की चाहत, साधु को कब हरि से मिला दे यह कहना मुश्किल है।

समय को पहचानना और पकड़ना आना चाहिए। मैंने भी तभी कुछ पकड़ने की चाह में हाथ बढ़ाया और पास में रखी सुराही गिर पड़ी और मेरी भी तन्द्रा टूटी। मन को स्वप्न टूट जाने का मलाल था। महाराज जी संगत प्राप्त करने की चाहत बलवती थी, पर मन भी समझा रहा था कि कौन किसी के साथ कहाँ कब तक चला है? चलना तो खुद को ही पड़ता है। हँस कर चलो या फिर रोकर, चलना तो पड़ेगा। बेहतर है एक ख्वाब ही टूटा है, विशुद्धानन्द नहीं। बेहतर है कि एक स्वप्न ही गुजरा है, वक़्त नहीं। फिर चल पड़ो विशुद्धानन्द, जगत को फिर एक शंकर देना है। फिर कदम बढ़ाओ विशुद्धानन्द, जगती को फिर एक श्रीराम मिलना है। चरैवेति चरैवेति।

आत्मनिर्भर भारत की नींव का पत्थर 'स्वावलम्बन' और सुसंस्कृत भारत का मूलाधार 'आत्मनिर्माण'

- श्री धीरेन्द्र कुमार (प्रज्ञा पाक्षिक अभियान से साभार)

स्वावलम्बन और आत्मनिर्माण: देश को आत्मनिर्भर और सुसंस्कृत बनाने के लिए दो तत्वों के अवलम्बन की विशेष रूप से आवश्यकता होती है- 'स्वावलम्बन' और 'आत्मनिर्माण'। देश तभी आत्मनिर्भर होगा, जब देश के सभी नागरिक आत्मनिर्भर होंगे। नागरिक तभी आत्मनिर्भर होंगे, जब वे किसी न किसी स्वावलम्बन को अपनाकर जीवन जियेंगे। स्वावलम्बन तभी आधार बनेंगे जब चित्त चेतना की समूची ऊर्जा इसी दिशा में नियोजित होगी, अर्थात् चिन्तन और प्रयत्न केन्द्रीभूत होकर एक ही दिशा में लगेंगे। केन्द्रीकरण का प्रयास तभी होगा, जब उसका महत्त्व समझा जाएगा। महत्त्व तभी समझा जाएगा, जब इस दिशा में समीक्षात्मक अध्ययन किया जाएगा। समीक्षात्मक अध्ययन तभी सम्भव जब चित्त एकाग्र होगा। एकाग्रता की साधना तभी हो सकेगी, जब मानसकि चेतना की कार्य प्रणाली के बारे में सम्यक् ज्ञानार्जन किया जाएगा। मानसिक चेतना अत्यन्त सूक्ष्मतम ऊर्जा है और उसके नियन्त्रण नियोजन की विधि भी उसी अनुरूप सूक्ष्म अध्यवसाय सापेक्ष है। यहाँ विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि किसी भी विधि को कार्यान्वित करने के लिए सबसे पहले उस सम्बन्ध में अपनी मान्यता और ग्रहणशीलता के तरीकों में अनिवार्य रूप से विधेयात्मकता का समावेश करना होगा और इसके लिए नीर-क्षीर को पृथक् करने वाली प्रखर विवेक-बुद्धि परम आवश्यक है। प्रखर विवेक बुद्धि के लिए गहन अध्ययन, चिन्तन-मनन, ध्यान साधनादि नियमित रूप से करना होगा।

श्रद्धा विश्वास और आत्मनिर्माण: श्रद्धा-विश्वास की शक्ति सर्वविदित है। देखा जाय तो यही एकमात्र आत्मनर्मिाण का आधार है। मनुष्य को किसी दिशा में आगे बढ़ने और ऊँचाइयों को छूने के लिए श्रद्धा विश्वास का अवलम्बन लेना ही होता है। यानि आत्मनिर्भर होने के लिए सबसे पहले श्रद्धा-विश्वास आधारित आत्मनिर्माण पर ध्यान देना होगा और यह निर्विवाद सत्य है कि अध्यात्म तत्त्वज्ञान रूपी विशाल भवन की नींव का पत्थर यह 'आत्मनिर्माण' ही है; क्योंकि बिना आत्मज्ञान के कोई अध्यात्म तत्त्वज्ञान कभी खड़ा नहीं होता। न्यायशास्त्र के अनुसार धुआँ वहीं उठता है जहाँ आग होती। उसी तरह अध्यात्म वहीं जीवित रहता है जहाँ आत्मनिर्माण, आत्मपरिष्कार, आत्मविकास और आत्मसुनियोजन का सम्यक् प्रयत्न अविच्छिन्न रूप से चलता है।

आत्मनिर्भरता की लहर: आज वातावरण में, देश के आकाश में वसन्त की महकती हवाओं की तरह आत्मनिर्भरता की चर्चा अखबारों की सुर्खियाँ बनी हुई है। इसका माहौल बनाने के लिए बौद्धिक जगत् में पुरजोर प्रयास हो रहा है। इसका कारण भी है, आज समय ही माँग कर रहा है, आवाज लगा रहा है। आजादी के लम्बे समय के बाद और स्थिति की दयनीयता में थोड़ा-बहुत सुधार होने के बावजूद आत्मनिर्भरता उस अनुरूप विकसित नहीं हो पायी है जैसा कि होना चाहिए और इसी अपेक्षा की परिपूर्ति हेतु देश के शुभाकांक्षी सम्वेदनशील मनीषा चिन्तित हैं और मनुष्य के मन्यु को नींद से जगाने और खुमारी उतारकर खड़ा होने के लिए झकझोर रहा है, पड़ोस के आसमान से असमय गिरने को उतावले ओलों के शूलों को निरस्त कर जला-गला डालने के लिए कमर कसकर तैयार रहने का आह्वान कर रहा है देशवासियों को चाहिए कि वे इसे सुने और उसका सामना करने और उससे लोहा लेने के लिए तैयार रहें। आज देश का शिखर व्यक्तित्व आह्वान कर रहा है, पर यह सभी देशवासियों के हृदय की आवाज होनी चाहिए, सबके हृदय का स्पन्दन होना चाहिए।

अध्यात्म का अवलम्बन: इस 'आत्मनिर्भरता' से 'आत्मनिर्माण' तक के सामान्य समीक्षा-सफर में एक तथ्य प्रबल रूप से उभर कर आ रहा है, वह है- 'अध्यात्म का अवलम्बन'। 'अध्यात्म' अर्थात् सबसे पहले अपने आत्मतत्व से सम्बन्धित तथ्यों पर गहन अध्ययन-अन्वेषण कर उसे कार्य में परणित करने का प्रयत्न करना और उसके बाद ही दूसरी दिशाओं में सोचना, करना, आगे बढ़ना। क्योंकि जब तक अपना निर्माण नहीं हो जाता, तब तक दूसरों के निर्माण के बारे में कैसे सोचा व करा जाएगा? दूसरों को दिखाने के लिए अपने पास साँचा तो होना चाहिए। इसीलिए पूज्य गुरुदेव ने 'हम बदलेंगे, युग बदलेगा; हम सुधरेंगे, युग सुधरेगा' का नारा दिया है।

ऐसा नहीं कि पहले युग सुधर जाए, फिर हम सुधरने के बारे में सोचेंगे। उन्होंने अपना सुधार 'आत्मनिर्माण' को संसार की सबसे बड़ी सेवा कहा है और आत्मनिर्भरता पर हमेशा से जोर दिया है। यह उनके द्वारा कहे गए व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और युग निर्माण का सबसे अनमोल, आधारभूत सूत्र है, जो सभी के लिए अनिवार्य रूप से अपनाने योग्य है। इसके बगैर किसी भी प्रकार की शान्ति, उत्कर्ष, प्रकाश विकास सम्भव नहीं हो सकता। तब पूज्य गुरुदेव के बताये शैली से शुरू करना होगा जिसको ऋषि शैली, वैदिक शैली व शास्त्रीय शैली भी कहा जाता है। व्यावहारिक भी यही है क्योंकि आत्मनिर्भरता का भव्य भवन आत्मनिर्माण की नींव रखे बगैर खड़ा नहीं हो सकता। यह शाश्वत क्रम है। बिना वृक्ष लगाए फल नहीं खाया जा सकता और पेड़ लगाने के लिए गड्ढा खोदना ही होता है। उसी तरह प्रगति उन्नति के मीठे फल क्रम के अवलम्बन से ही प्राप्त किया जा सकता है। व्यतिक्रम करके सुस्वादु फल की आकांक्षा करने का अर्थ है मरुभूमि में सुशीतल जलपान की आकाश कुसुम कल्पना करना। कितने सुदूरदर्शी थे हमारे संस्कृति के संवाहक, साधना विज्ञान के निष्णात् महान वैज्ञानिक ऋषि मनीषीगण! उन्होंने अपने अथक परिश्रम, तप त्यागपूर्ण अनुसन्धानों से वो अकाट्य तथ्य खोज निकालकर दिये हैं, जिनके अनुवहन से जीवन की सार्थकता स्वतः प्राकट्य हो जाएगी।

समर्थ सज्जन आगे आयें: खुशी की बात है और देश का भी सौभाग्य है कि आज पूज्य गुरुदेव के इस स्वर्णिम सूत्र को देश के मूर्धन्य लोगों द्वारा समझा जाने लगा है और इससे भी बड़ी खुशी की बात यह है कि इस पर कार्य करने के लिए संकल्प के साथ पहल होने लगी है। इसके लिए प्रशासनिक स्तर पर प्रोत्साहन, संयोजन, मार्गदर्शन और सहयोग का आश्वासन भी व्यक्त होने लगा है। हालाँकि अभी यह उत्साह आत्मनिर्भरता की दहलीज पर पहुँचा है, पर देर सबेर एक दिन आत्मनिर्माण के सांस्कृतिक आधारों को भी समझा जाएगा और तब निश्चित रूप से भारत के लिए सबसे शुभकारी दिन होगा, जब देश में हरेक नागरिक के द्वारा संस्कृति की बात की जाने लगेगी और सब ओर अध्यात्म विषयक चर्चा होने लगेगी तथा उस ओर कदम भी बढ़ने लगेंगे। तभी सही मायने में आत्मनिर्भर भारत बनेगा जहाँ चहुँओर उजाला ही उजाला होगा।

सुसंस्कृत लोग संस्कृति को सँभालें: एक विशेष और करणीय कार्य यह है कि अगर देश को आत्मनिर्भर के साथ-साथ सुसंस्कृत भी बनाना हो, जो कि परम आवश्यक भी है, तो इसके लिए देश के सुसंस्कृत समृद्ध जनों को आगे आकर कार्य करना होगा। श्री-समृद्धि, संस्कृति-सम्प्रभुता की रक्षा-सुरक्षा सुसंस्कृत समाज ही कर सकता है। अशिक्षित असंस्कृत लोग तो अपनी अस्तव्यस्तता का ही होश नहीं होता, उन्हें खुद को ही समर्थों का सहारा चाहिए। अत: इस महान कार्य के लिए समर्थ सुसंस्कृतों को ही उदारता दिखानी होगी; यह उचित भी है। जबकि सवाल उसी आत्मनिर्माण से प्रारम्भ करने का उठता है, तो भी यही एकमात्र मार्ग है जिसके सोपान पर चढ़कर आत्मनिर्भरता के शिखर तक पहुँचा जा सकता है और वहाँ स्थिर रहा जा सकता है। अगर आत्मनिर्माण को छोड़ दें, तो आत्मनिर्भर बन जाने पर भी सुसंस्कृत तो नहीं बन सकेंगे और बिना सुसंस्कृत, परिमार्जित हुए स्थिति वहीं की वहीं रहेगी, जहाँ दुनिया के दूसरे देशों के लोग हैं। वहाँ विकास तो है, समृद्धि सम्पन्नता भी है, सुख संसाधनों का अम्बार है, पर वहाँ धरातल पर भीषण ज्वालामुखी भी धधक रही है जो किसी भी पल समुची धरती को जलाकर भस्म कर देने को उन्मत्त है। क्या करेंगे ऐसे विकास और आत्मनिर्भरता को जहाँ शान्ति के साथ साँस लेने के लिए ओषजन से भरे थोड़ा सा आकाश भी न हो। इसीलए आत्मनिर्भर भारत का निर्माण आत्मनिर्माण के उर्वर उपकरण से करना होगा। यही प्रयत्न सार्थक और सुखदायी होगा।

समृद्धि का नियन्त्रण सुधीजन के हाथ हो: देश चाहे जितना विकास करे, समृद्धि चाहे जितनी भी बढ़े, यह अच्छी बात है, पर इस सबका नियन्त्रण सुधी जनों के हाथों में रहे तो

अच्छा होगा। कारण औद्योगिक उपक्रमों से आर्थिक आधार मजबूत किया जा सकता है। लोगों को रोजगार देकर मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी की जा सकती हैं, उनको स्वावलम्बी बनाकर समृद्धि विकास की दिशा में आगे बढ़ाया जा सकता है। इसके लिए विभिन्न गृहोद्योगों से प्रारम्भ करके बृहोद्योगों तक पहुँचा जा सकता है और ग्रामोद्योगों को शहरी उद्योगों के रूप में विकसित, परिवर्तित कर एक बड़ी सफलता हासिल की जा सकती है तथा समृद्ध भारत का जश्न भी मनाया जा सकता है; परन्तु यह समृद्धि जब तक सुधी सज्जनों, विवेकवानों के नियंत्रण में नहीं रहेगी, तब तक यह विनाश का सरंजाम ही जुटाती रहेगी और महाप्रलय को आमन्त्रण देती रहेगी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पड़ोस में नजर डालकर देखा जा सकता है। यही कारण है कि महापुरुषगण सबसे पहले सद्बुद्धि को जगाने का परामर्श दिया है। गायत्री मन्त्र को भी इसीलिए सर्वश्रेष्ठ कहा गया है, क्योंकि इसमें सद्बुद्धि की प्रेरणा है। महामृत्युञ्जय में अमृतत्व की अभीप्सा की गई है। दानव और राक्षसगण भी अमृत की कामना की है। पर हुआ क्या? भस्मासुर वरदान देने वाले को ही भस्म करने को आमादा था। यह दुर्बुद्धि के हाथों समृद्धि का दुष्परिणाम है। गायत्री मन्त्र में सद्बुद्धि की कामना प्रार्थना अन्तर्निहित है। यह तथ्य है कि जैसी कामना होती है, ऊर्जा वैसी ही उत्पन्न होती है और प्रयत्न भी उसी तरह के होते हैं। इसीलिए आत्मनिर्भर भारत के साथ साथ आत्मनिर्माणोन्मुख भारत निर्माण का प्रयत्न भी प्रमुखता से करना होगा, इसके बाद ही आत्मनिर्भरता निरापद और सुफलदायक होगा।

क्या करना होगा?: दोनों के साथ सामञ्जस्य बिठाकर सजगता के साथ आगे बढ़ना होगा। शरीर के लिए अन्न जितना आवश्यक है, अन्त:करण के लिए भावना संवेदना उतना ही जरूरी है। आत्मनिर्भर हेतु स्वावलम्बन भी दरकार है तो आत्मनिर्माण हेतु अन्तर्परिष्कार भी आवश्यक है। समाज रूपी शरीर के पोषण और विकास के साथ- साथ उसकी सुरक्षा का कवच भी होना चाहिए। इसलिए हस्तपदादिक कर्मेन्द्रियों को उद्योगादि के माध्यम से स्वावलम्बन में नियोजित करने के साथ-साथ ज्ञानेन्द्रियों सहित कामना भावनाओं को आत्मनियन्त्रणात्मक साधना प्रयत्नों में संयोजित रखकर आगे बढ़ने का तरीका अपनाया जाय। यह प्राचीनतम ऋषियों की पद्धति है। गुरुकुल आरण्यकों के संचालन में यही तरीका अपनाया जाता था। शिक्षा देने वाले ऋषि महात्मा खुद भी संयमित रहते थे और अपने शिष्यों सहित जनसामान्य को भी ज्ञान, कर्मादि योग साधना की शिक्षा प्रदान करते थे। परिणाम स्वरूप भारत समग्र विश्व में सभी दृष्टियों से शिरोमणि बना हुआ था। आज फिर से उसी तरह के प्रयास की आवश्यकता है। देश को आत्मनिर्भर बनाकर आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाना है तो तकनीकी दृष्टि से अपेक्षित विकास करके परावलम्बन की विवशता को दूर करने की भी आवश्यकता है। इसके लिए देश के प्रत्येक नागरिक को कमर कसना होगा, दृढ़ संकल्प का अमोघ अस्त्र लेकर कछुए की चाल से चल रहे विकास की गति में तेजी लानी होगी।

बच्चों को भी संलग्न किया जाय: इसका प्रारम्भ बड़ों से करने के साथ ही बच्चों को भी इसमें संलग्न रखा जाय। बच्चे पढ़ने के साथ- साथ नवसृजन की कला भी सीखते जाएँ। बालऊर्जा को जिस दिशा में भी लगा दी जायेगी, उस दिशा में तीव्र गति से प्रगति होती जाएगी; क्योंकि बाल्यकाल में प्रगति की गति तेज होती है। इसलिए स्वावलम्बन से जुड़ी रहने वाली शिक्षा को प्रधानता दी जाय, तो बेहतर परिणाम आ सकते हैं। इससे सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक कला कौशल में भी बच्चे निपुण हो सकेंगे। यह होने से देश की प्रगति में बहुत तेजी आयेगी। आने वाली पीढ़ी जवान होते- होते विकसित मस्तिष्क की होगी और ऐसे में उत्पादों की बढ़ोत्तरी इस गति से होगी कि जिसे देखकर दुनिया की आँखें फटी की फटी रह जायेंगी। इस दिशा में प्रयत्न होना चाहिए। विचार और कार्य ऐसे होने चाहिए, जिससे सभी वर्ग के हाथों में सुशिक्षा, सुसंस्कार, स्वावलम्बन हो तथा उनका हृदय देश प्रेम की भावना से ओतप्रोत हो। सबके मुख से एकात्मता के स्वर मुखर हों, सबके चरण एक ही लय ताल में चलें, तो समझना चाहिए देश प्रगति, उन्नति और आत्मनिर्भरता की दिशा में गति कर रहा है। यह गति बहुत ही शुभ और सबको शुकून देने वाली होगी। इस प्रकार आत्मनिर्भर भारत की नींव का पत्थर स्वावलम्बन है तो सुसंस्कृत भारत का मूलाधार आत्मनिर्माण है। इन दोनों के विकास का प्रयत्न एक साथ होना चाहिए। तब एक और एक दो न होकर ग्यारह की ताकत हो जाएगी।

आध्यात्मिक पर्यटन- एक आन्तरिक यात्रा

- डॉ. मोनिका पाण्डेय, सहायक प्राध्यापक, पर्यटन विभाग

सृष्टि की अनुपम कृति मानव सदैव से ही आनन्द को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला तथा एक प्रकार का भिक्षुक व जिज्ञासु रहा है और अपनी इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए वह तरह-तरह के पर्यटन तथा विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण करता रहा है। इस प्रकार के भ्रमण ने पर्यटन को जन्म दिया। प्रारम्भ में इसका उद्देश्य मानसिक एवं आध्यात्मिक शांति पाने का था तथा इसका स्वरुप तीर्थयात्रा के रुप में प्रचलित था। जाने वाले यात्री को यह ज्ञात नहीं होता था कि वह वापस आएगा भी कि नहीं, इसलिए वह पूर्ण रुप से विदा लेकर तथा तैयारी के साथ जाते थे। लेकिन बीतते समय के साथ-साथ यात्रा व पर्यटन का स्वरुप बदलता गया और लोग ज्ञान अर्जित करने, अपना हित साधने, एक दूसरे की संस्कृतियों को जानने, विदेशी मुद्रा का अर्जन करने एवं अर्न्तराश्ट्रीय शांतिकुंज एवं सद्भाव विकसित करने के लिए पर्यटन करने लगे। आज पर्यटन का सामाजिक एवं आर्थिक महत्व इतना बढ़ गया है कि प्रबुद्ध वर्ग इस पर पुनर्विचार करने को बाध्य हुआ है। पर्यटन के इसी स्वरुप में एक नाम और जुड़ गया है जिसे अध्यात्मिक पर्यटन कहते हैं।

आध्यात्मिक पर्यटन का विशेष महत्व है। पर्यटन के क्षेत्र में आध्यात्मिक पर्यटन एक नया आयाम है। वर्तमान परिस्थितियों में यह समस्याओं के समाधान का पर्यटन है। यह हमारी संस्कृति का महत्वपूर्ण सोपान है। जिसको स्वीकार कर कोई भी पर्यटक, आध्यात्मिक पर्यटन के मूल उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है। परम पू० गुरुदेव के वाड्ग्मय 'तीर्थ सेवन क्यों और कैसे' में इसके प्राचीन स्वरुप की अवधारणा देखने को मिलती है। आध्यात्मिक पर्यटन को आन्तरिक यात्रा भी कहा जा सकता है। जिसका सम्बन्ध पर्यटक के अर्न्तमन से है।

यह पर्यटन अर्न्तमन को प्रभावित करने वाला पर्यटन है, इसके अन्तर्गत अन्तर्मन के विकास की सतत चलने वाली प्रक्रिया शामिल है। इसकी आधारशिला प्राचीन तीर्थयात्रा पर रखी गयी है। सामान्यजन अपने जीवन से समय निकाल कर आध्यात्मिक क्षेत्रों में भ्रमण करने जाया करते थे, जिसके लिए वे आध्यात्मिक स्थल का चुनाव करते थे। जहाँ जाने पर स्थल का वातावरण व ऋषि-मुनियों का सत्संग व साथ उनमें नई ऊर्जा का संचार करता था, जिस कारण उनका षारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य उत्तम रहता था, जो कि सामाजिक व्यवस्था व पारिवारिक षांति को बनाये रखने का श्रेष्ठतम मार्ग है। धार्मिक श्रेष्ठ कर्मो में आध्यात्मिक यात्रा (तीर्थयात्रा) को अग्रणी माना गया है। इसी कारण पुराणों में अनेक स्थलों पर इसके महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

विष्णुपुराण में तीर्थ के महत्व का वर्णन किया गया है जिसमें वर्णित है कि पापी, महापापी सभी अश्वमेध से तथा तीर्थानुसरण तीर्थ यात्रा से शुद्ध हो जाते हैं।

अनुपातकिनस्त्वेते महापातकिनो यथा।
अष्वमेधेन षुद्धयन्ति तीर्थानुसरणेन च।।

आध्यात्मिक पर्यटन को दो स्वरुपों में विभाजित किया जा सकता हैं। पहला स्वरुप बाह्य आध्यात्मिक पर्यटन का तथा दूसरा स्वरुप है आन्तरिक आध्यात्मिक पर्यटन का।

बाह्य अध्यात्मिक पर्यटन (प्रथम चरण) के अन्तर्गत पर्यटकों द्वारा की जाने वाली तीर्थयात्रा तथा तीर्थस्थल में किये जाने वाले क्रियाकलाप है, जो पर्यटक के अंतर्मन को षांति प्रदान करने में एक औशधि का कार्य करता है या यह भी कहा जा सकता है कि स्थूल क्रियाओं के द्वारा सूक्ष्म के सकारात्मक कणों को विकसित करके अन्तर्मन को श्रेश्ठ गति प्रदान करना है। इसके अन्तर्गत गोवर्धन, गिरनार आदि पर्वतों, व्रजधाम, प्रयाग, पंचकोषी आदि क्षेत्रों की परिक्रमा, जप, यज्ञ, अनुश्ठान इत्यादि आज भी की जाती है, जो कि बाह्य पर्यटन का ही स्वरुप है।

आन्तरिक आध्यात्मिक पर्यटन (द्वितीय चरण) की अवधारणा विषेशतः उन योगियों, महापुरुशों व ऋशियों-मुनियों की है जो आन्तरिक रुप से परिपक्व पर्यटक है या यह भी कह सकते हंै कि जो मूलाधार से सहस्रार तक की यात्रा कर रहे है। ये महापुरुश कई जन्मों से लगातार अपने आन्तरिक विकास, व्यक्तित्व परिश्कार तथा मोक्षप्राप्ति के मार्गों की ओर सतत् अभ्यास द्वारा पर्यटन कर रहे हैं। वास्तव में यह यात्रा मानव से देवमानव बनने की भी है। जिसके अन्तर्गत जीव जन्म जन्मान्तर से यात्रा कर रहा है और यह यात्रा तब तक पूर्ण नहीं होती, जब तक षिव से षक्ति का तथा आत्मा से परमात्मा का मिलन नहीं होता या इस तरह से कह सकते है कि जब तक यात्री अपनी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर लेता।

पर्यटन का अर्थ है आनन्द व मनोरंजन के लिए की गयी यात्रा, किन्तु आध्यात्मिक पर्यटन का अर्थ इससे कुछ अधिक है। यह हमारी भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण सोपान है। सामाजिक व्यवस्था व पारिवारिक षान्ति को बनाये रखने का श्रेष्ठतम् मार्ग हैं। गुरुदेव द्वारा वर्णित ''स्वस्थ षरीर, स्वच्छ मन व सभ्य समाज'' की कल्पना को मूर्त रुप देने वाला मार्ग है, जिस पर चलकर कोई भी पर्यटक अध्यात्मिक पर्यटन के मूल उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है।

कलातन्त्र का आधार एवं उद्देश्य

- डॉ. शिवनारायण प्रसाद, विभागाध्यक्ष, भारतीय शास्त्रीय संगीत विभाग

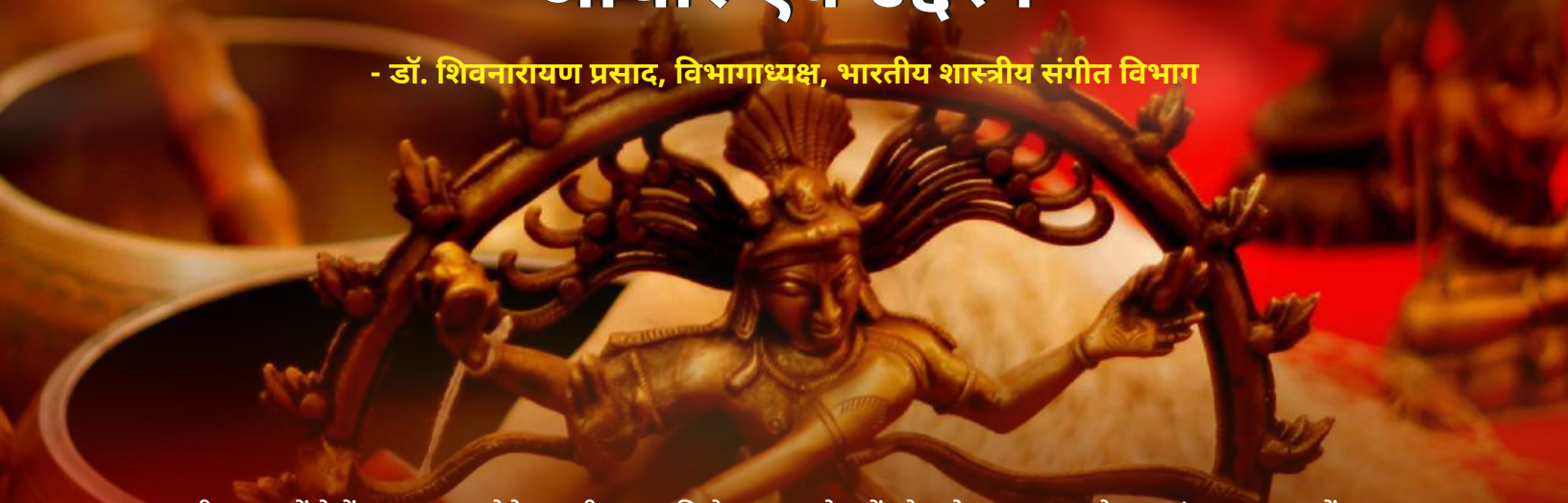

प्राचीनकाल में वेदों का प्रचलन होते हुए भी भरतमुनि ने यह अनुभव किया कि वैदिक-ज्ञान अति कठिन है। आर्यावर्त के अधिकांश लोग इस ज्ञान से वंचित रह जाते हैं। कहा जाता है कि अपनी इसी पीड़ा को उन्होंने ब्रह्मा जी के समक्ष रखा तो, ब्रह्मा जी ने उन्हें पंचम वेद बनाने का निर्देश दिया।

ब्रह्मा जी की प्रेरणा से भरतमुनि ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर पंचम वेद का रूप नाट्यशास्त्र की रचना की। इस नाट्यशास्त्र के आधार पर मंचित नाटक में देवगण, नायक, असुर, अप्सरा, नायिकायें, यक्ष, उद्घोषक, गन्धर्व, गायक किन्नर तथा विदूषकों का सृजन हुआ। इसके पीछे भरतमुनि का उद्देश्य आसुरी पापवृतियों का उन्मूलन ही रहा होगा। उनके अनुसार कोई भी उपदेश, अभिनय के माध्यम से देने पर, कला की अभिव्यक्ति के साथ विभिन्न रसों का भी सञ्चार होता है। इस प्रकार साधारण से साधारण लोग भी ज्ञान की बातों को भली-भाँति जान पाते हैं।

भरतमुनि की भाँति परम पूज्य गुरुदेव वेदमूर्ति पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने भी नाट्यशास्त्र को महत्त्व दिया। उन्होंने भी कलातन्त्र के चार स्तम्भ - लेखन, अभिनय, संगीत और चित्रकला का महत्त्व समझाया, जिसके द्वारा मानव समुदाय लोकशिक्षण अर्थात लोकरंजन से लोकमंगल के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। उनके अनुसार कलातंत्र समाज का आयना होता है। समाज में प्रचलित रीति रिवाजों, त्योहारों और लोक व्यवहार को कलातंत्र नए स्वरुप में प्रस्तुत करता है। जहाँ कला के माध्यम से मानवीय मनोरंजन होता है वहीं उसमें समाहित लोकशिक्षण से सामाजिक ढ़ांचा भी सुदृण होता है। कलातंत्र सच्चे अर्थों में सामाजिक समस्वरता का भी परिचायक होता है। सामाजिक आंदोलनों, नयी राहों को कलातंत्र के माध्यम से सहजता से समझा- समझाया जा सकता है।

कलातन्त्र का उद्देश्य अनगढ़ को सुगढ़ बनाने, व्यक्ति, परिवार और समाज, राष्ट्र एवं संस्कृति को ऊँचा उठाने वाला होना चाहिए। भारत की संस्कृति- देवताओं की संस्कृति कहलाती है। भारत एक कला प्रधान देश है, संस्कृति को कला के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का एक प्रभावशाली साधन है। पुराने समय में कला के द्वारा नाटक, रामलीला, कृष्णलीला, प्रेरक कठपुतलि नृत्य आदि ऐसे प्रेरक कथानक शैली में कार्यक्रम गाँव, नगर, शहर आदि जगहों में किये जाते थे। इसके पीछे एक ही उद्देश्य था कि जनसामान्य लोग भी शिक्षित-अशिक्षित बच्चे, बूढ़े, जवान सभी स्तर के लोग महापुरुषों के आदर्शों को मनोरञ्जन के साथ लोकशिक्षण के प्रारूप को भी अपना सके। इस प्रकार जन-जीवन को कला के माध्यम से विचार देने के आवश्यकता निश्चित रूप से पूरी हो जाती थी।

परन्तु आधुनिक सिनेमा की प्रतिद्वंद्विता में इसकी उपेक्षा होने लगी। लोग केवल मनोरंजन की ओर बढ़ते जा रहे हैं।

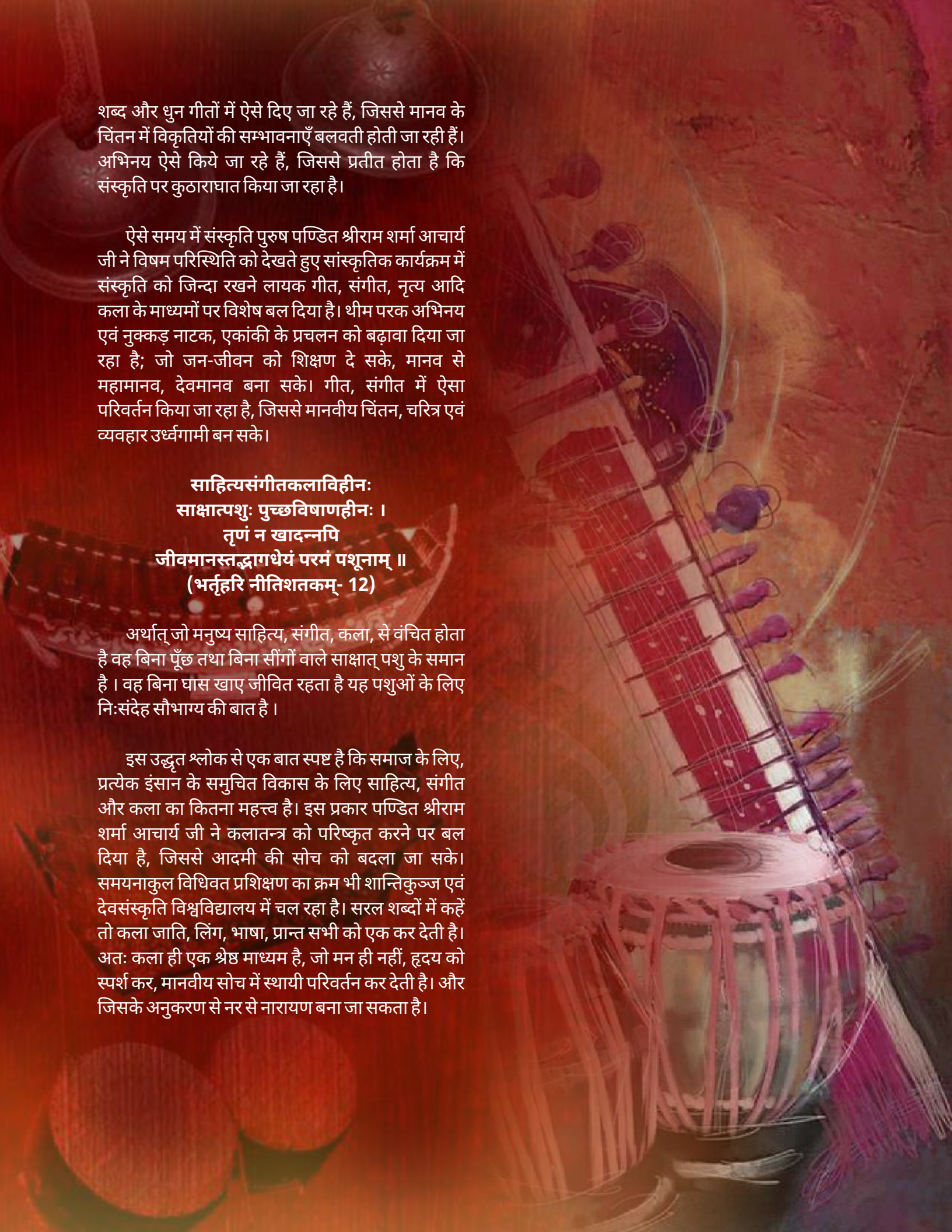

शब्द और धुन गीतों में ऐसे दिए जा रहे हैं, जिससे मानव के चिंतन में विकृतियों की सम्भावनाएँ बलवती होती जा रही हैं। अभिनय ऐसे किये जा रहे हैं, जिससे प्रतीत होता है कि संस्कृति पर कुठाराघात किया जा रहा है।

ऐसे समय में संस्कृति पुरुष पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने विषम परिस्थिति को देखते हुए सांस्कृतिक कार्यक्रम में संस्कृति को जिन्दा रखने लायक गीत, संगीत, नृत्य आदि कला के माध्यमों पर विशेष बल दिया है। थीम परक अभिनय एवं नुक्कड़ नाटक, एकांकी के प्रचलन को बढ़ावा दिया जा रहा है; जो जन-जीवन को शिक्षण दे सके, मानव से महामानव, देवमानव बना सके। गीत, संगीत में ऐसा परिवर्तन किया जा रहा है, जिससे मानवीय चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार उर्ध्वगामी बन सके।

साहित्यसंगीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि
जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥
(भर्तृहरि नीतिशतकम्- 12)

अर्थात् जो मनुष्य साहित्य, संगीत, कला, से वंचित होता है वह बिना पूँछ तथा बिना सींगों वाले साक्षात् पशु के समान है । वह बिना घास खाए जीवित रहता है यह पशुओं के लिए निःसंदेह सौभाग्य की बात है ।

इस उद्धृत श्लोक से एक बात स्पष्ट है कि समाज के लिए, प्रत्येक इंसान के समुचित विकास के लिए साहित्य, संगीत और कला का कितना महत्त्व है। इस प्रकार पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने कलातन्त्र को परिष्कृत करने पर बल दिया है, जिससे आदमी की सोच को बदला जा सके। समयनाकुल विधिवत प्रशिक्षण का क्रम भी शान्तिकुञ्ज एवं देवसंस्कृति विश्वविद्यालय में चल रहा है। सरल शब्दों में कहें तो कला जाति, लिंग, भाषा, प्रान्त सभी को एक कर देती है। अतः कला ही एक श्रेष्ठ माध्यम है, जो मन ही नहीं, हृदय को स्पर्श कर, मानवीय सोच में स्थायी परिवर्तन कर देती है। और जिसके अनुकरण से नर से नारायण बना जा सकता है।

प्रकृति का प्रहार एवं मनुष्य का सामञ्जस्य कोविड १९ के सन्दर्भ में

- डॉ. असीम कुलश्रेष्ठ (सहायक प्राध्यापक, योग विभाग)

''केवल हम प्रकृति एवं पर्यावरण को बचाएँगें '' यह उक्ति भी मनुष्य का अहंकार ही प्रतीत होती है। प्रकृति को बचाने के लिए तरह-तरह के सम्मेलन, गोष्ठी, कान्फ्रेन्स, बैठक इत्यादि करने वाला मनुष्य आज प्रकृति की अभिव्यक्ति को देखकर स्तब्ध है। इस कोरोना संकट की घड़ी में सबसे ज्यादा अगर किसी घटना पर प्रभाव पड़ा है तो वह है **''प्रकृति एवं पर्यावरण''**। विगत् वर्षो में प्रकृति का भरपूर दोहन हुआ है, ग्लोबल वार्मिंग से लेकर हर तरह के प्रदूषण यथा जल, वायु,ध्वनि, मिट्टी को देखते हुए यह कुछ समय का एकांत प्रकृति एवं अन्य प्राणियों के लिए अति सुखकर है। इस संकट में सबसे ज्यादा नकारात्मक प्रभाव मनुष्य एवं उसकी तथाकथित सभ्यता पर पड़ा है। यह सच है कि कोरोना का यह संकट एक विभीषिका के रूप में सामने आया है। इसका इस माध्यम से आना सम्पूर्ण मानव जाति के लिये एक बुरा सपना है।

यथार्थ में यह एक दुखद परिणति का पर्याय बनता जा रहा है परन्तु एक सच यह भी है कि इस पृथ्वी पर केवल मनुष्य ही नहीं और भी वनस्पतियाँ व जीव-जन्तु रहते है। इस परम समर्थ ऊर्जा ने जीवन के अनेकानेक रूपों को पृथ्वी पर प्रकट किया है। जिसका उददेश्य एक दूसरे से सामंजस्य कर अपना-अपना विकास करना ही रहा होगा। अगर गहराई से देखें, तो पूरा का पूरा ब्रह्माण्ड एक नियम के अंतर्गत चल रहा है। इस ब्रह्माण्ड का एक अत्यन्त छोटा कण - पृथ्वी भी अनेकानेक नियमों में बँधी है। पृथ्वी के ऊपर आच्छादित 'प्रकृति' सुन्दरता एवं रहस्यमयता से भावविभोर करती है।

सूक्ष्म विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि इस प्रकृति से छेड़खान धीरे-धीरे प्रकृति को विकृति की ओर ले गया। प्रकृति एवं इसके संसाधनों का लगातार खनन, वनों की कटाई, भूमि की जगह बड़े-बड़े कंक्रीट खडे करना, विभिन्न प्रकार के विषैले रसायनों का पानी में मिलना, यूरिया इत्यादि को मिट्टी में मिलाना, शोरगुल से ध्वनि को प्रदूषित करना, वायु का अशुद्ध होना, ओजोन में छेद होना, बहुत बड़ी जनसंख्या का विस्फोट होना इत्यादि इन सभी का कारण बस एक ही है - **''प्रकृति के संसाधनों का भौतिकवादी**

उपयोग''। जबकि प्रकृति तो सामंजस्य के लिये बनी थी। हमारा **''परिस्थितिकीय तंत्र''** हमारा मित्र था, जो हमारे विकास में सहायक था। समय के साथ इससे संतुलन के बजाय मनुष्य ने इसके आंतरिक एवं वाह्य आवरण पर गहरी चोटें दी है। इस चोट ने प्रकृति को लहूलुहान कर दिया है। प्रकृति अब विकृति की अंतिम दशा में जा पहुँची थी।

इस बीच **''कोरोना संकट''** एक माध्यम बनकर सामने आया। इस संकट को कौन लाया? क्यों लाया? कब लाया? कहाँ लाया? कैसे लाया? इस पर अलग से विचार किया जा सकता है। इस पर ''मानव जाति'' नकारात्मक प्रयोग का विश्लेषण कर सकती है। परन्तु इसके परिणाम के सकारात्मक पक्ष पर भी बात करना उचित ही लगता है, क्योंकि प्रदूषण के इस भयावह दौर में प्रकृति खिल उठी है, जीव-जन्तु खुला और तनावरहित महसूस कर रहे हैं। पत्तों में चमक है, वायु शुद्ध है, आसमान साफ है, हवायें ठन्डी है, मिटटी की असल महक वापस लौटी हैं पानी की शुद्धता एवं उसका स्वरूप लौटा है। शांति के दर्शन हो रहे हैं इत्यादि।

कुल मिलाकर इन एकांत के पलों में प्रकृति का मौन मुखर हो उठा है। प्रकृति हम सभी से अपनी पुरानी व्यथा ना कहते हुए कुछ दिनों में ही वसंत के झोकों में हुलस उठी है। वह कहने लगी- हे मनुष्य! मैं अपनी रक्षा स्वयं कर लूंगी। तू मेरी चिंता मत कर। मुझे मत बचा। मैं स्वयं अपने को बचा लूंगी। तू तो बस मेरे विभिन्न आयामों से सामंजस्य कर। इस संतुलन में ही मैं अपने मूल स्वरूप में रहूँगी। जिससे तू भी स्वस्थ्य-शरीर स्वच्छ-मन एवं सभ्य-समाज की ओर कदम बढ़ा सकेगा।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी का कथन सत्य ही है जहाँ उन्होंने कहा था कि, प्रगतिशील सभ्यता की दौड़ में अग्रणी मानव को पीछे की और लौटना होगा। प्रकृति के नियमों का पालन करना होगा। ऋग्वेद भी कहता है ''जीवेम शरदः शतम्''। अर्थात् हम सौ वर्ष तक सुख पूर्वक जीयें। यह उक्ति एक उदाहरण के रूप में है, जहाँ अपने जीवन जीने के अर्थ को स्पष्ट करना हमारा लक्ष्य बन जाता है। प्रश्न यह उठता है कि सौ वर्ष तक सुखपूर्वक कैसे जीयें? उत्तर स्पष्ट है कि प्रकृति से सामंजस्य एवं सन्तुलन कर के ही सौ वर्षों तक जीते हुए अपने मनुष्य होने के उद्देश्यों को खोजा जा सकता है। अपने शरीर एवं मन पर विभिन्न प्रयोगों को किया जा सकता है। अन्ततः अपने अहंकार को हटाते हुए ब्रह्माण्डीय स्वार्थ को अपनाना होगा; जहाँ शुद्धता, रूपान्तरण एवं संतुलन का रहस्यमयी मेल है।

ऑनलाइन शिक्षा
एक प्रयास, एक आवश्यकता

- श्री दीपक कुमार (प्रवक्ता, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग)

शिक्षा प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कितना महत्व रखती है, ये तो हम सभी जानते हैं। किसी कारणवश यदि कुछ दिनों के लिए शिक्षा-संस्थान बंद हो जाएँ, तो उससे होने वाले नुकसान से प्रत्येक विद्यार्थी प्रभावित होता होगा। वर्तमान समय तो भीषण महामारी के दौर से गुजर रहा है। इस कोविड-19 महामारी ने न केवल शिक्षा क्षेत्र को; बल्कि पूरी जीवन प्रकिया को स्थगित-सा कर दिया है। कोई एक देश नहीं, पूरा विश्व इस महामारी की चपेट में आकर पिछले कुछ महीनों में जैसे ठहर-सा गया था। अभी भी यह क्रम जारी है। ऐसे में शिक्षा- संस्थानों पर तो ताले ही जड़ गए हैं और इस कारण प्रत्येक विद्यार्थी अपने को पिछड़ा हुआ महसूस कर रहा है। ऐसे में ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता सबसे अधिक महसूस की गई और फिर जन्म हुआ डिजिटल शिक्षा, डिजिटल स्कूल, ऑनलाइन सभाओं का। ऐसे आचार्य जिनके लिए स्मार्टफोन चलाना मुश्किल था, उन्होंने विद्यार्थियों के भविष्य के लिए, उन्हें ऑनलाइन शिक्षा देने के लिए तथा अपने शिक्षक होने का कर्तव्य अच्छी तरह निर्वहन के लिए, इस नई ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली को अंगीकार किया और आज अपने आपको प्रसन्नता से अभिपूरित पा रहे हैं।

22 अप्रैल, 2020 को प्रकाशित यूनेस्को की रिपोर्ट के अनुसार, कहा गया है कि इस कोविड-19 महामारी के प्रकोप के बीच वैश्विक स्तर पर शैक्षणिक संस्थानों के बंद होने से 154 करोड़ से अधिक छात्र बुरी तरह प्रभावित हुए हैं। यूनेस्को की सहायक शिक्षा महानिर्देशक स्टीफनिया गियानिनी ने पीटीआई को दिए एक साक्षात्कार में कहा कि आने वाले दिनों में ड्रॉप आउट की दर में वृद्धि होगी, जो किशोरों पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी। उन्होंने यह भी कहा कि विश्व स्तर पर शैक्षणिक संस्थानों में नामांकित छात्रों की कुल आबादी में से लगभग 89 प्रतिशत कोविड-19 के प्रकोप के कारण स्कूलों, कॉलेजों और संस्थानों से बाहर हैं। स्टेफानिया गियानिनी ने यह भी कहा कि **''यूनेस्को द्वारा इस उद्देश्य के लिए सुझाई गई छह-सूत्रीय रणनीति में शिक्षकों और समुदायों का लाभ उठाना, उपयुक्त दूरस्थ शिक्षा प्रथाओं को अपनाना, डिजिटल विभाजन को देखते हुए, महत्वपूर्ण सेवाओं की सुरक्षा और युवा लोगों को सम्मिलित करना शामिल है।''**

यदि हम भारत के बारे में बात करते हैं तो मार्च 2020 के दूसरे सप्ताह में सभी शैक्षणिक संस्थानों को पूरी तरह से बंद कर दिया गया था। कोरोना महामारी की शुरुवात के दौरान राज्य और केंद्र सरकार द्वारा सभी संस्थानों को बंद कर दिया गया था। इस लॉकडाउन के कारण दुनिया भर में ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली में तेजी से वृद्धि हुई है। आज के दौर में रुकना किसी को पसंद नही हैं। इसलिए सभी ने इस बड़े बदलाव को

थोड़े ही समय में अपना भी लिया है। जहाँ आधुनिक विज्ञान, इण्टरनेट से जुड़ी युवा पीढ़ी के लिए इस बदलाव को स्वीकारना आसान रहा है, वहीं शिक्षकों और बड़ी पीढ़ी को इसे अपनाने में थोड़ी कठिनाई होती भी देखी गयी है। इतने सारे व्यतिरेकों के बावजूद सभी ने अपने जीवन को प्रगतिशील रखने के लिए इस विधा सीख ही लिया।

इस लॉकडाउन की अवधि में छात्र और शिक्षक दोनों ही शिक्षा जारी रखने के महत्व को समझते हैं। भारत सहित कई देशों ने व्यापक स्तर पर दूरस्थ शिक्षा शुरू की है; क्योंकि अब इस संकट में निरंतर शिक्षा का कोई दूसरा विकल्प नहीं है। भारत कई वर्षों से इसका संचालन कर रहा है, ऑनलाइन शिक्षा के संचालन में भारत कोई नौसिखिया नहीं है। कई निजी और सरकारी स्कूलों और कॉलेजों ने पसंदीदा मोबाइल और इण्टरनेट नेटवर्क का उपयोग करके, व्यापक मंच पर ऑनलाइन दूरस्थ शिक्षा शुरू की है। कोविड-19 लॉकडाउन ने ऑनलाइन दूरस्थ शिक्षा को गति दी है।

ऑनलाइन शिक्षा को प्रगति देने के लिए अनेक मोबाइल एप्प और ऑनलाइन एप्पलीकेशन आयी। जिनमें जूम और गूगल क्लासरूम, माइक्रोसॉफ्ट टीम, गूगल मीट, सिस्को-वेबएक्स आदि एप्पलीकेशन स्कूल, कॉलेज तथा अन्यान्य शैक्षणिक संस्थानों द्वारा सर्वाधिक प्रयुक्त और पसंद की जाने वाली रही हैं। साथ ही मेरिटनेशन, टॉपर, वेदांतु और एक्स्ट्रामार्क्स जैसे कई अन्य एप्प हैं, जो लॉकडाउन अवधि के दौरान आईआईटी- जेईई, एनईईटी, आईसीएसई, सीबीएसई, आईएएस, सीपीटी, कैट की तैयारी आदि के लिए विशेष रूप से बेहतर ऑनलाइन शिक्षा प्रदान करने के लिए तेजी से फले और फूले हैं।

वर्तमान परिदृश्य को देखते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आने वाले वर्षों में ऑनलाइन दूरस्थ शिक्षा के बहुत सारे परिष्कृत तरीकों की माँग बढ़ेगी। ऑनलाइन डिस्टेंस एजूकेशन समय की आवश्यकता बन गई है, इस महामारी की स्थिति में इसकी माँग बढ़ गई है क्योंकि यह निरंतर शिक्षा का एकमात्र स्रोत है और अधिकांश प्रतिष्ठित संस्थान इस विषम समय में, इस शिक्षा प्रणाली को अपनाने में आने वाली समस्याओं का निराकरण ढूँढ़ने में लगे हुये हैं। पारंपरिक क्लास रूम शिक्षण से लेकर आवासी शिक्षण संस्थानों तक इसका प्रभाव पड़ा है। ऑनलाइन शिक्षा को जारी रखने में जिन सबसे महत्वपूर्ण समस्याओं या बाधाओ का सामना करना पड़ता है, वह कमजोर इण्टरनेट कनेक्टिविटी, परिष्कृत प्रौद्योगिकियों की कमी और अच्छे शिक्षा पैकेज सॉफ्टवेयर की समस्या है। अन्य बाधायें भी हैं- उपनगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों में ऑनलाइन शिक्षा जारी रखना बहुत चुनौतीपूर्ण है। जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा अनपढ़ और मध्य विद्यालय शिक्षा के जाल के तहत आते है, जो वेब आधारित शिक्षा के उपयोग को नहीं जानते हैं। उनमें से अधिकांश इण्टरनेट की उच्च लागत को वहन नहीं कर सकते हैं। अगर अभी भी हम शहरी और उपनगरीय क्षेत्र को देखें, तो ऑनलाइन शिक्षा के विस्तार क्षेत्र के लिए बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

ऑनलाइन एजुकेशन के लिए जूम और गूगल क्लासरूम, माइक्रोसॉफ्ट टीम, गूगल मीट, सिस्को-वेबएक्स आदि जैसे ऑनलाइन प्लेटफॉर्म सबसे ज्यादा इस्तेमाल किए जाने वाले प्लेटफॉर्म बन रहे हैं। हालाँकि ऑनलाइन शिक्षा तेजी पकड़ रही है, लेकिन फिर भी ऑनलाइन सीखने-सिखाने के तरीके में सुधार करने और कुछ तकनीकी, सामाजिक, शैक्षणिक और मनोवैज्ञानिक मुद्दों को हल करके इसे और अधिक परिष्कृत बनाने की आवश्यकता है। इन मुद्दों में मजबूत इण्टरनेट कनेक्टिविटी, ऑनलाइन शैक्षणिक पैकेजों का विकास, परिष्कृत प्रौद्योगिकियाँ, लाइव निर्देश, सर्वश्रेष्ठ मॉडलिंग, अच्छी तरह से संरचित और सामंजस्यपूर्ण बातचीत, प्रायोगिक शिक्षण और गहन शिक्षण का निर्माण कार्य शामिल है। इन सभी के साथ-साथ ऑनलाइन सीखना दिलचस्प और आकर्षक हो, तो विद्यार्थी इसका समूचित लाभ ले सकते हैं।

नेशनल सैंपल सर्वे की रिपोर्ट के मुताबिक, देश के सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले 90 लाख छात्रों को ऑनलाइन शिक्षा की कोई सुविधा नहीं है। 24 प्रतिशत घर स्मार्टफोन के माध्यम से इण्टरनेट से जुड़े हैं, और केवल 11 प्रतिशत के पास इण्टरनेट कनेक्शन वाला कम्प्यूटर है, इसमें अभी देश में और विकास की आवश्यकता है। इन सब के बावजूद भारत एवं समस्त विश्व इस महामारी से एक साथ लड़ रहे हैं और देश का प्रत्येक नागरिक विकास के मुख्य वर्ग शिक्षा को लेकर सजग है। ऑनलाइन शिक्षा तकनीक को अपनाने और उसमें आ रही समस्याओं को दूर करके निरन्तर आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। समय के साथ ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली में सुधार और विकास होगा, जो देश तथा विश्व को एक सूत्र में बाँधकर आगे बढ़ाएगी।

आत्मनिर्माण की जीवन साधना

- पं.श्रीराम शर्मा आचार्य जी

मौजूदा कोरोना वायरस के वैश्विक संक्रमण की अभूतपूर्व एवं असाधारण परिस्थितियाँ हममें से किसी से छिपी नहीं है। असुरता जिस स्तर की हो उसी के अनुरूप प्रतिरोध खड़ा करने के अतिरिक्त परिवर्तन की प्रक्रिया और किसी प्रकार सम्पन्न नहीं हो सकती। सोचने का तरीका गलत होने से जीवन में अगणित गुत्थियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। भावना, आकांक्षा, अभिरुचि और प्रवृत्ति के कुमार्गगामी हो जाने से असंतोष, अभाव और सन्ताप का बाहुल्य हो जाता है। प्रस्तुत समय में पाठकगण आत्मचिंतन, आत्मशोधन, आत्मनिर्माण एवं आत्मविकास की साधना में नियोजित करें और अपने दृष्टिकोण एवं कार्यक्रम में आवश्यक हेर-फेर करके आनन्द और उल्लास का, प्रकाश और विकास का जीवन जिएँ।

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ पं०श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने अखण्ड ज्योति १९६४ के सितम्बर माह के पृ० ५०-५१ में आत्मनिर्माण की जीवन साधना के समयानुकूल उपयोगी सूत्र बतलाएँ हैं, जो पाठकों के लिए प्रेरक एवं दिशाबोधक सिद्ध होगा।

यह निर्विवाद है कि धर्म और सदाचार के आदर्शवादी सिद्धान्तों का प्रशिक्षण भाषणों और लेखों से पूरा नहीं हो सकता। यह दो माध्यम महत्त्वपूर्ण तो है, पर इनका उपयोग इतना ही है कि वातावरण तैयार कर सकें। वास्तविक प्रभाव तो तभी पड़ता है जब अपना अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करके किसी को प्रभावित किया जाए। चूँकि हमें नये समाज की, नये आदर्शों की, जनमानस में प्रतिष्ठापना करनी है इसलिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि अखण्ड ज्योति परिवार के सदस्य दूसरों के सामने अपना अनुकरणीय आदर्श रखें। प्रचार का यही श्रेष्ठ तरीका है। इस पद्धति को अपनाये बिना जनमानस को उत्कृष्टता की दिशा में प्रभावित एवं प्रेरित किया जाना संभव नहीं।

इसलिए वर्तमान समय का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि परिवार का प्रत्येक सदस्य इस बात की चेष्टा करे कि उसके जीवन में आलस्य, प्रमाद, अव्यवस्था एवं अनैतिकता की जो दुर्बलताएँ समायी हुई हों उनका गंभीरतापूर्वक निरीक्षण करे और इस आत्मचिन्तन में जो-जो दोष दृष्टिगोचर हों उन्हें सुधारने के लिए एक क्रमबद्ध योजना बनाकर आगे बढ़ चले।

आत्मचिन्तन के लिए हममें से हर एक को अपने से निम्न प्रश्न पूछने चाहिए और उनके उत्तरों को नोट करना चाहिए-

१. समय जैसी बहुमूल्य जीवन निधि का हम ठीक प्रकार सदुपयोग करते हैं या नहीं? आलस्य और प्रमाद में उसकी बर्बादी तो नहीं होती?
२. जीवन लक्ष्य की प्राप्ति का हमें ध्यान है या नहीं? शरीर सज्जा में ही इस अमूल्य अवसर को नष्ट तो नहीं कर रहे? देश, धर्म, समाज और संस्कृति की सेवा के पुनीत कत्तव्य की उपेक्षा तो नहीं करते?
३. अपनी विचारधारा एिवं गतिविधियों को हमने अन्धानुकरण के आधार पर बनाया है या विवेक दूरदर्शिता एवं आदर्शवादिता के अनुसार उनका निर्धारण किया है।
४. मनोविकारों एवं कुसंस्कारों के शमन करने के लिए हम संघर्षशील रहते हैं या नहीं? छोटे-छोटे कारणों को लेकर हम अपनी मानसिक शान्ति से हाथ धो बैठने और प्रगति के सारे मार्ग अवरुद्ध करने की भूल तो नहीं करते?
५. कटुभाषण, छिद्रान्वेषण एवं अशुभ कल्पनाएँ करते रहने की आदत छोड़कर सदा संतुष्ट, प्रयत्नशील एवं हँसमुख रहने की आदत हम डाल रहे हैं या नहीं?
६. शरीर, वस्त्र, घर तथा वस्तुओं को स्वच्छ एवं सुव्यवस्थित रखने का अभ्यास किया या नहीं? श्रम से घृणा तो नहीं करते?
७. परिवार को सुसंस्कारी बनाने के लिए आवश्यक ध्यान एवं समय लगाते हैं या नहीं?
८. आहार सात्विकता प्रधान होता है न? चटोरपन की आदत छोड़ी जा रही है न? सप्ताह में एक समय उपवास, जल्दी सोना, जल्दी उठना, आवश्यक ब्रह्मचर्य का नियम पालते है न?
९. ईश्वर उपासना, आत्मचिन्तन, स्वाध्याय को अपने नित्य नियम में स्थान दे रखा है न?

१०. आमदनी से अधिक खर्च तो नहीं करते? कोई दुव्र्यसन तो नहीं? बचत करते हैं न?

उपर्युक्त दस प्रश्न नित्य अपने आपसे पूछते रहने वाले को जो उत्तर आत्मा दे उन पर विचार करना चाहिए और जो त्रुटियाँ दृष्टिगोचर हों, उन्हें सुधारने का नित्य ही प्रयत्न करना चाहिए।

आत्मसुधार के लिए क्रमिक परिष्कार की पद्धति को अपनाने से भी काम चल सकता है। अपने सारे दोष-दुर्गुणों को एक ही दिन में त्याग देने का उत्साह तो लोगों में आता है, पर संकल्प शक्ति के अभाव में बहुधा वह प्रतिज्ञा निभ नहीं पाती, थोड़े समय में वही पुराना कुसंस्कारी ढर्रा आरम्भ हो जाना है। प्रतिज्ञाएँ करने और उन्हें न निभा सकने से अपना संकल्प बल घटता है और फिर छोटी-छोटी प्रतिज्ञाओं को निभाना भी कठिन हो जाता है। यह क्रम कई बार चलाने पर तो मनुष्य का आत्मविश्वास ही हिल उठता है और वह सोचता है कि हमारे कुसंस्कार इतने प्रबल हैं कि जीवनोत्कर्ष की दिशा में बदल सकना अपने लिए संभव ही न होगा। यह निराशाजनक स्थिति तभी आती है जब कोई व्यक्ति आवेश और उत्साह में अपने समस्त दोष-दुर्गुणों को तुरन्त त्याग कर देने की प्रतिज्ञा करता है और मनोबल की न्यूनता के कारण चिर-संचित कुसंस्कारों से लड़ नहीं सकता।

आत्मशोधन का कार्य एक प्रकार का देवासुर संग्राम है। संस्कारों की आसुरी प्रवृत्तियाँ अपना मोर्चा जमाये बैठी रहती हैं और वे सुसंस्कार धारण के प्रयत्नों को निष्फल बनाने के लिए अनेकों छल-बल करती रहती हैं। इसलिए क्रमशः आगे बढ़ने और मंथर, किन्तु सुव्यवस्थित रीति से अपने दोष-दुर्गुणों को परास्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। सही तरीका यह है कि अपना सभी बुराइयों एवं दुर्बलताओं को एक कागज पर नोट कर लेना चाहिए और प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर उसी दिन का ऐसा कार्यक्रम बनाना चाहिए कि आज अपनी अमुक दुर्बलता को इतने अंशों में तो घटा ही देना है। उस दिन का जो कार्यक्रम बनाया जाये उसके संबंध में विचार कर लेना चाहिए कि इनमें कब, कहाँ, कितने, किन कुविचारों की प्रबल होने की संभावना है, उन संभावनाओं के सामने आने पर हमें कम से कम कितनी आदर्शवादिता तो दिखानी ही चाहिए, यह निर्णय पहले ही कर लेना चाहिए और फिर सारे दिन प्रातःकाल की हुई प्रतिज्ञा के निबाहने का दृढ़तापूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी सफलता में आत्मसुधार की दिशा में प्राप्त होती चले, तो अपना साहस बढ़ेगा और धीरे-धीरे सभी दोष-दुर्गुणों को छोड़ सकना संभव हो जाएगा।

आज इतनी मात्रा में ही भोजन करेंगे, इतनी दूर टहलने जाएँगे, इतना व्यायाम करेंगे, आज तो ब्रह्मचर्य रखेंगे ही, बीड़ी पीने आदि का कोई व्यसन हो, तो रोज जितनी बीड़ी पीते थे उसमें एक कम कर ही देंगे, इतने समय भजन या स्वाध्याय करेंगे ही, सफर एवं व्यवस्था में आज इतनी देर का अमुक समय तो लगा देंगे ही, इस प्रकार की छोटी-छोटी प्रतिज्ञाएँ नित्य लेनी चाहिए और उन्हें अत्यन्त कड़ाई के साथ उस दिन तो पालन कर ही लेना चाहिए। दूसरे दिन कि स्थिति समझते हुए फिर दूसरे दिन की सुधरी दिनचर्या बनायी जाए इसमें शारीरिक क्रियाओं का ही नहीं, मानसिक गतिविधियों का सुधार करने का भी ध्यान रखा गया हो। प्रतिदिन छोटी-छोटी सफलताएँ प्राप्त करते चलने से अपना मनोबल निरन्तर बढ़ता है और फिर एक दिन साहस एवं संकल्प बल इतना प्रबल हो जाता है कि आत्मशोधन की किसी कठोर प्रतिज्ञा को कुछ दिन ही नहीं, वरन् आजीवन निबाहते रहना सरल हो जाता है।

दैनिक आत्मचिंतन एवं दिनचर्या निर्धारण के लिये एक समय निर्धारित किया जाए। दिनचर्या निर्धारण के लिए प्रातः सोकर उठते ही शय्या त्याग न किया जाए वह समय सर्वोत्तम है। आमतौर से दिन खुलने के कुछ देर बाद ही लोग शय्या त्यागते हैं। कुछ समय तो ऐसे ही आलस्य में पड़े रहते हैं। यह समय दैनिक कार्यक्रम बनाने के लिए सर्वोत्तम है। इसी प्रकार आत्मचिंतन के लिए रात को सोते समय का अवसर सर्वोत्तम है। शय्या पर जाते ही तुरन्त किसी को नींद नहीं आ जाती इसमें कुछ देर लगती है। इस अवसर को आत्मचिंतन में अपने आपसे दस प्रश्न पूछने और उनके उत्तर प्राप्त करने में लगाया जा सकता है। जिनके पास अन्य सुविधा के समय मौजूद हों, वे इन कार्यों को सुविधा के अन्य समयों पर भी कर सकते हैं। पर उपर्युक्त दो समय व्यस्त से व्यस्त सज्जनों के लिए भी सुविधाजनक रह सकते हंै और इन दोनों प्रक्रियाओं को अपनाकर हम आसानी से आत्मिक प्रगति के पथ पर बहुत आगे तक बढ़ सकते हैं।

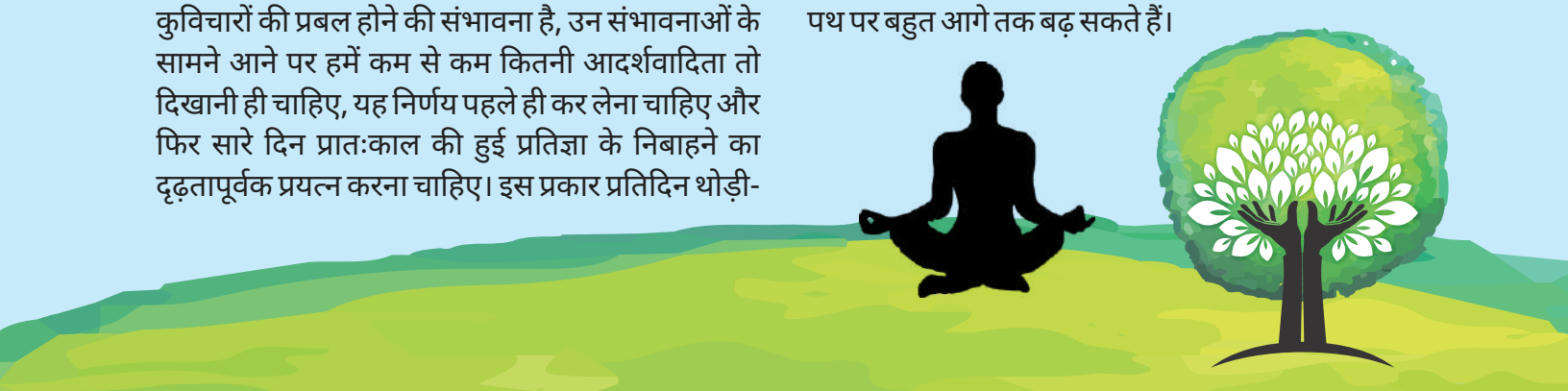

युग का निर्माण फिर-फिर
हृदय में विश्वास फिर-फिर

हो रहा विप्लव ताण्डव छा रहा घनघोर अँधियारा
मन के अन्धकूप में क्यों खोज रहे सभी उजियारा
हर मन आज आशंकित तमस करती वारा न्यारा
फिर भी एक सोच गुँजरित बोल वही प्यारा प्यारा
आस्था निनाद फिर-फिर निश्चित प्रभास फिर-फिर । ... १

आक्रांताओं ने सिर उठाया लगा अन्तरंग मुरझाने
अपने-अपने राम के फिर ढूँढ़ने लगे सभी मायने
टूट रही आज श्रद्धा और लगा विश्वास डगमगाने
फिर भी एक हूँक निखरे अन्तस में आस जगाने
गायत्री संधान फिर-फिर चैतन्य प्रकाश फिर-फिर ।.... २

चार दिनों का प्रपञ्च रचा सुख-दुःख जीवन साथी
कभी शोकाकुल हृदय कभी हँसी खिलखिलाती
उठती-गिरती हर लहर बस अन्तःकरण भिगो जाती
फिर भी एक हुलस प्यारी तारा कोई तोड़ लाती
मोहनी मुसकान फिर-फिर अंतस निखार फिर-फिर। ... ३

रे मनुष्य! अब सँभल निरर्थक है यह तेरा वहम्
जगती का रचियिता भी ना कभी करे अहम्।
जगत् के सृष्टि चक्र में काम आयेंगे तेरे करम
फिर भी एक आस लहके तोड़कर सारे भरम
चेतना आह्वान फिर-फिर जगती उद्धार फिर -फिर । ... ४

- प्रो. अभय सक्सेना

अब डायरी नहीं होती

सब कुछ वर्चुअल का जमाना है,
कविताओं की अब डायरी नहीं होती
वो डायरी जिसकी खुशबू फिर,
उन बीते पलों में हमें ले जाती थी,
वो दृश्य पटल पर छा जाता था,
जब भाव कविता में ढल जाती थी,
वो डायरी अब नहीं होती।

आज की ये वर्चुअल दुनिया,
इस डायरी का मूल्य ये क्या जाने,
ये डायरी जब कभी पुरानी हो जाती है,
और हमारे जाने के बाद,
जब वंशजों के हाथ मे आती है,
कोई उसे निशानी समझ, आँखों में सँजोता है,
तो कोई युवा पीढ़ी, अपनी भावनाएँ पिरोता है,
वो डायरी अब नहीं होती।

कुछ ऐसे भी होते हैं, जो इसे रद्दी में दे आते हैं,
और फिर इनके पन्ने, परचून की दुकान में शोभा पाते हैं,
फिर कोई साहित्य प्रेमी, इसमें कुछ ख़रीद लाता है,
और अनायास ही जब वो, इसके शब्दों में खो जाता है,
अन्तहीन इन पन्नों से व्याकुल, अपनी चाह बतलाता है,
काश ये डायरी यहीं होती, काश ये डायरी यहीं होती।

- डॉ. आरती कैवर्त 'रितु'
(प्रवक्ता, वैज्ञानिक अध्यात्मवाद विभाग)

एकोहम् बहुस्यामि का संकल्प

योग .....
मौन की भाषा और अंतर्मन का संवाद
ना कोई विवाद
धैर्यता के साथ और आन्तरिक संकल्प
नहीं हो अब कोई विकल्प

अब .....
करे प्रयास एकाग्रता का हो विकास
छोड़े व्याकुलता का भाव
घनीभूत होकर मनन का करे अभ्यास
नहीं हो विचलित मन के साथ

और इस के बाद .....
केंद्र में जाने के लिए
कुछ करना होगा ??
चल रे मन अब ??
आत्मबोध को तू साध
तत्वबोध की कर तलाश
फिर नहीं रहेगा कोई भी राग

कर तू अब सकारात्मक शुरुआत
और ये शुरुआत ही तो बाद में
लक्ष्य बन जायेगा
क्या करोगे अब .....जब
सबमें ही एक का ही अहसास हो जायेगा

फिर देखना .....
एकोहम् बहुस्यामि का संकल्प
योग के रूप में सामने आएगा
अंतस के जागरण में नया
शाश्वत दीप प्रज्ज्वलित हो जायेगा !!

- डॉ. अवनेन्दु पाराशर,
(सहायक प्राध्यापक, पर्यटन विभाग)

Indian Media in Covid Pandemic

- Dr. Smita Vashistha (Sn. Assistant Professor, JMC Dept.)

Media is a backbone of any communication channel of a country. Whatever strategies are planned, policies discussed and executed, media plays a very important role in informing the common man about its happening. As media revolves around 5W 1H that is, what, where, when, why, who and how but despite of the fact that people do not know these technicalities for practical aspects and they depend only on the media.

All of us are well aware of the fact that the world is in the pangs of covid 19 and all of us means every human has to take precautions to be safe from it. The covid 19 virus has the feature of transferring the virus which makes it more dangerous to spread.

The more it is dangerous the more measures are being taken to protect it. And media is not far behind in ensuring the same. We all hear the voice of Mr. Amitabh Bacchan who instructs us on the phone to be protected from this virus. Not only this, because of strict physical distancing measures, people are heavily reliant on maintaining connectivity using global digital social networks, such as Facebook or Twitter, to facilitate human interaction and information sharing about the virus. And on news too they depend on social media news websites, television etc.

Media is very positive in informing about the control of it. But sometimes it is hiding the facts too as many people are dying of the virus; infact many people from media industry have died too. But the good news is that the Indians have built the immunity for it and they are on the safer side. Media people, actors too have contributed to the pandemic. Sonu sood, an actor has contributed by arranging transportation facilities for the people and send the laborers to their homes.

Sometimes the media has become a tool of propaganda and sensationalism too. Some television news channels were talking about Chinese conspiracy theory in the spread of COVID-19. People believed it and they start criticizing China for it. There was the time when people were scared to view the television as they were showing the pictures of deadbodies from around the world. But in this situation too there were many tv channels who were showing the real stories.

"People were confused, isolated and tense", and in this confusion and lack of proper information by media many creepy things emerged out like vegetable seller Imran - who didn't want to use his real name - told the BBC that when a fake video on WhatsApp said to show a Muslim man spitting on bread went viral, calls for a boycott of Muslims grew. Imran informed that "we were scared to enter villages where we would usually go to sell vegetables,". He belongs to Uttar Pradesh state. Although the similar news was

controlled but they spread like a fire and become a talk of the town.

The TV programmes like KBC made a positive debate that they encouraged the Karamveer and yodha by the programme in which people who served the nation during pendemic were honoured and respected. The people shared their stories with the common man. The Doctors, Nurses, and other staff members were honoured in the show.

The other episodes like Comedy with Kapil also gave the message that despite of all the odd situations, laughter is still the best medicine to heal. There are so many episodes produced without audience but the actor's performance was at par.

Campaigns by TV News channels were successful. During these testing times when coronavirus is spreading rapidly in the country, news channels have taken measures to make viewers more vigilant to fight this pandemic through various TV and social media campaigns.

The campaign contained 13 clips named #CoronaKoDhona became very popular in TV and social media pages of ABP news.

Most of the newspapers too are producing it from their homes. Work from home was the almost task of many media persons. Media people said "There are challenges in the way we communicate, because this is an unusual situation. Reporters need to be careful and follow the best practices while out for a story. Inevitably, most of our reportage has been about COVID-19,"
The Wire team reported "The office has stocked up on enough tissues and soap. Surfaces such as staircase railings, mantles, doors and handles are disinfected twice or thrice per day. With all the measures the reporters were alert for their duty.

Overall we can say that the role of media is to entertain, inform and educate the people of the country and they do fulfill their commitment. It should always be remembered that the duty of the media is to prioritize the benefit of the common man. We just adore the spirit of Media members for their vital contribution during this pandemic.

Dev Sanskriti Vishwavidyalaya, Gayatrikunj-Shantikunj, Haridwar

www.dsvv.ac.in

- Recognized by the UGC
  (under section 2(f) to the UGC act, 1956)
- ISO 9001:2015 Certified
- First State private University of Uttarakhand
- Privately sponsored by Vedmata Gayatri Trust
  (No financial aid from any Government agency)
- NAAC Accredited University
- Member of Association of Common Wealth Universities.
- Member of International Council of Professional Therapists (ICPT), London
- Knowledge partner of Ministry of Tourism
- Invited member of Swachh Bhaarat Abhiyaan
- Core committee member for celebrating International Day of Yoga
- Recipient of the renowned Erasmus+ Scholarship
- Host of Asia's first Centre for Baltic Culture and Studies

DEV SANSKRITI
VISHWAVIDYALAYA

**Recognized by UGC,
Accredited by NAAC and
Certified by ISO 9001:2015**